• वर्ष ६३ • अंक २४ • मूल्य ₹१५

दिसम्बर (द्वितीय) २०२१

पाक्षिक

परोपकारी

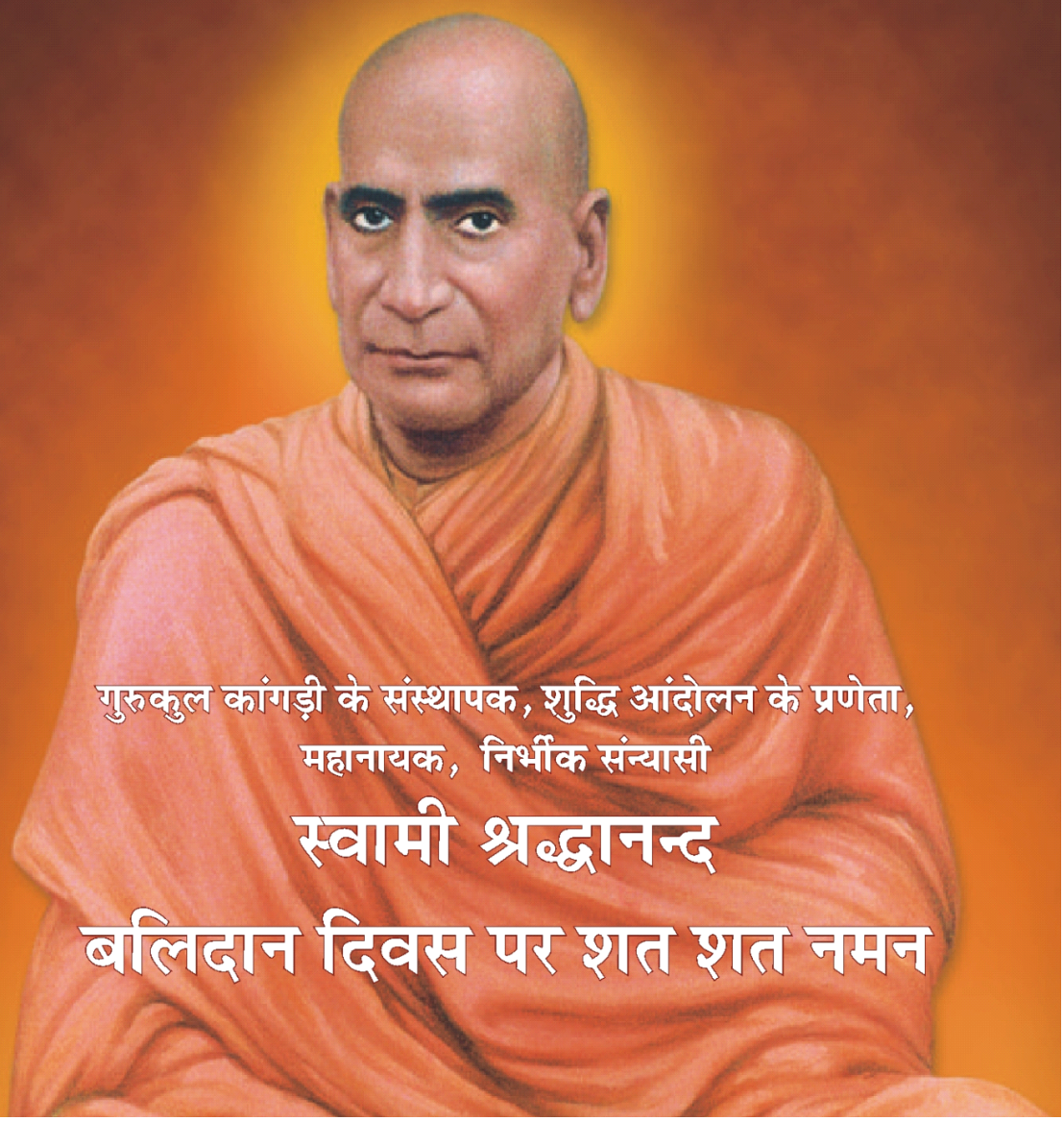

गुरुकुल कांगड़ी के संस्थापक, शुद्धि आंदोलन के प्रणेता,
महानायक, निर्भीक संन्यासी

स्वामी श्रद्धानन्द

बलिदान दिवस पर शत शत नमन

श्री गजानन्द आर्य स्मृति वेदगोष्ठी की झलकियाँ

महर्षि दयानन्द सरस्वती की
उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा
का मुखपत्र

ओ३म्

विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षाः,
सत्यव्रता रहितमानमलापहाराः।
संसारदुःखदलनेन सुभूषिता ये,
धन्या नरा विहितकर्म परोपकाराः।।

वर्ष : ६३ **अंक** : २४
दयानन्दाब्द: १९७
विक्रम संवत् - मार्गशीर्ष शुक्ल २०७८
कलि संवत् - ५१२२
सृष्टि संवत् - १,९६,०८,५३,१२२

सम्पादक
डॉ. वेदपाल

प्रकाशक- परोपकारिणी सभा,
केसरगंज, अजमेर- ३०५००१
दूरभाष: ०१४५-२४६०१६४

मुद्रक-मन्त्री, परोपकारिणी सभा
वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।
दूरभाष : ०१४५-२४६०८३१

परोपकारी का शुल्क
भारत में
एक वर्ष-३०० रु.
पाँच वर्ष-१२०० रु.
आजीवन (१५ वर्ष) -३००० रु.
एक प्रति - १५/- रु.
विदेश में
वार्षिक-५० यू.के. पाउण्ड/८० यू.एस.डॉलर
द्विवार्षिक-९५ पाउण्ड/१५२ डॉलर
त्रिवार्षिक-१४० पाउण्ड/२२५ डॉलर
आजीवन (१५वर्ष)-५००पा./८०० डॉ.
एक प्रति - ३ पाउण्ड
एक प्रति - ४ डॉलर

वैदिक पुस्तकालय : ०१४५-२४६०१२०
ऋषि उद्यान : ०१४५-२६२१२७०

RNI. No. ३९५९ / ५९

परोपकारी

दिसम्बर-द्वितीय २०२१

अनुक्रम

०१. शौर्यशिखर-स्वामी श्रद्धानन्द	सम्पादकीय	०४
०२. अग्नि सूक्त-१८	डॉ. धर्मवीर	०६
स्वामी विद्यानन्द सरस्वती वैदिक प्रचार ट्रस्ट		०८
०३. स्वामी श्रद्धानन्द पिंजरे में बन्दी...	प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'	०९
०४. मेरे पिता	श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति	१३
परोपकारिणी सभा द्वारा प्रकाशित पुस्तकों पर विशेष छूट		१९
०५. महान् शिक्षाविज्ञ	आ. विधुशेखर भट्टाचार्य	२०
०६. अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द	श्री महाशय कृष्ण	२२
'सत्यार्थ प्रकाश' प्रचार महायज्ञ में आपकी आहुति		२३
०७. मेरे धर्मबन्धु स्वामी श्रद्धानन्द	महात्मा गांधी	२४
०८. स्वराज्य, स्वधर्म व स्वाभिमान...	श्री विनोद बंसल	२६
०९. स्वामी श्रद्धानन्द	डॉ. दिनेशचन्द्र शास्त्री	२८
१०. राष्ट्रीय एकता के प्रबल पोषक...	श्री रामनिवास गुणग्राहक	३०
संस्था की ओर से....		३२

www.paropkarinisabha.com
email : psabhaa@gmail.com
उपनिषद्, दर्शन, प्रवचन आदि सुनने हेतु बटन दबाएँ
www.paropkarinisabha.com→gallery→videos

'परोपकारी' पत्रिका में प्रकाशित सभी आलेखों में व्यक्त विचार लेखकों के निजी हैं। इन्हें सम्पादकीय नीति नहीं समझा जाये।
किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्यायक्षेत्र अजमेर ही होगा।

शौर्यशिखर-स्वामी श्रद्धानन्द

नीतिकारों का कथन है कि-

उत्साहसम्पन्नमदीर्घसूत्रं क्रियाविधिज्ञं व्यसनेष्वसक्तम्।
शूरं कृतज्ञं दृढ़सौहृदञ्च लक्ष्मी स्वयं मार्गति वासहेतोः।।

उत्साह-शौर्य आदि गुणों से युक्त व्यक्तियों को लक्ष्मी/श्री/आभा/दीप्ति स्वयं ढूँढती है, अर्थात् इन गुणों से युक्त व्यक्ति ही आभायुक्त-दीप्तिमान् होते हैं। किसी भी समाज एवं राष्ट्र का नेतृत्व करने में वही व्यक्ति सफल होते हैं, जो उत्साह एवं शौर्य आदि गुणों से युक्त हों। संसार में उत्साही व्यक्ति तो बहुत मिल जाएंगे, किन्तु उत्साह के साथ शौर्य का संयोग विरले मनुष्यों में ही दिखाई देता है। शौर्य गुण के अभाव में उत्साह क्षणस्थायी होता है। इस प्रकार के व्यक्ति बड़े-बड़े कार्य प्रारम्भ तो कर देते हैं, किन्तु विघ्न-बाधाओं के आने पर उन कार्यों की परिणति से पूर्व ही वह कार्य को छोड़ बैठते हैं।

स्वामी श्रद्धानन्द ऐसे महापुरुष हैं, जिनमें उत्साह एवं शौर्य का मणिकाञ्चन संयोग है। यह स्वामी जी के जीवन एवं कार्य शैली के स्थायी भाव हैं। इसीलिए बड़ी से बड़ी बाधाएँ उन्हें विचलित नहीं कर सकी हैं। स्वामी जी ने असम्भव दिखाई देनेवाले कार्य जिस उत्साह के साथ प्रारम्भ किए, उन्हें उसी प्रकार अप्रतिम शौर्य के साथ परिणति तक पहुँचाया।

शिक्षा के क्षेत्र में जनसाधारण के लिए सन् १८९८ ई. में गुरुकुल स्थापना का संकल्प स्वप्न से अधिक नहीं था। इस हेतु गुरुकुल स्थापना से पूर्व तीस हजार रुपये संग्रह करने का संकल्प तो दिवा स्वप्न ही कहा जा सकता था, किन्तु चालीस हजार की धनराशि का संग्रह कर गुरुकुल की स्थापना करना शून्य से शिखर का आरोहण ही है।

आर्यसमाज के धर्मसंस्कृति के साथ ही देशप्रेम की भावना का प्रबल प्रचारक होने के कारण ब्रिटिश सरकार इसे राजद्रोही संगठन समझती थी। सन् १९०७ ई. में लाला लाजपतराय तथा सरदार अजीतसिंह (सरदार भगतसिंह के चाचा और सरदार अजीतसिंह के पिता सरदार भगतसिंह के दादा सरदार अर्जुनसिंह की महर्षि दयानन्द के प्रतिनिष्ठा सर्वज्ञात ही है।) के निर्वासन के पश्चात् सन् १९०९ ई. में पटियाला के ८४ आर्यसमाजियों के विरुद्ध राजद्रोह का अभियोग प्रारम्भ कर दिया गया। इस विकट परिस्थिति में स्वामी श्रद्धानन्द (जो उस समय महात्मा मुंशीराम थे।) ने आर्यों को उस अभियोग से मुक्त कराने के लिए जो प्रयत्न किए वह आर्यसमाज के इतिहास का स्वर्णिम पृष्ठ है। धौलपुर के सत्याग्रह को तो राजस्थान के आर्यजन भी भूल चुके हैं। धौलपुर के सत्याग्रह के शताब्दी वर्ष के आयोजन में राजस्थान सभा की निष्क्रियता किसी से छिपी नहीं है।

३० मार्च सन् १९१९ ई. में दिल्ली में रोलेट एक्ट के विरुद्ध आन्दोलन का नेतृत्व करते हुए गोराशाही संगीनों के सामने सीना तानकर खड़े हो जाना स्वामी जी के शौर्य का जीवन्त निदर्शन है। यदि शौर्य स्वामी जी के जीवन का स्थायीभाव न होता तो जलियांवाला बाग काण्ड के पश्चात् दिसम्बर सन् १९१९ में अमृतसर में कांग्रेस का अधिवेशन सम्भव ही नहीं हो पाता। अधिवेशन से पूर्व असमय हुई भयंकर वर्षा से सभी व्यवस्थाओं के अस्त व्यस्त होने पर स्वामी जी ने स्वागताध्यक्ष के रूप में अपनी सूझ-बूझ और कुशल संगठक का दायित्व निर्वहन कर अधिवेशन की सफलता सुनिश्चित की। आपने स्वागत भाषण हिन्दी में प्रस्तुत किया। इसी सम्मेलन में स्वामी जी ने अछूत समस्या के सामाजिक एवं धार्मिक समाधान करने पर बल दिया। कांग्रेस के सन् १९२० के नागपुर अधिवेशन में आपने अछूतोद्धार का कार्यक्रम प्रस्तुत किया। यद्यपि कांग्रेस ने इन प्रस्तावों पर गम्भीरतापूर्वक कार्य नहीं किया। स्वामी जी ने कांग्रेस की कार्य शैली से उकताकर ९ सितम्बर १९२१ को महात्मा गांधी को पत्र लिखा।

''मैंने लाहौर से आपको तार दिया था, जिसमें आपको सूचित किया था कि दिल्ली प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी से मैं अस्पृश्यता निवारण के लिए आर्थिक सहायता पाना चाहता हूँ, किन्तु दिल्ली पहुँचने पर मैंने महसूस किया कि कांग्रेस के माध्यम से दलित जातियों का उत्थान करना कठिन है।''

सन् १९१३ ई. में ले. गवर्नर जेम्स मेस्टन, सन् १९१६ में वायसराय लार्ड चेम्सफोर्ड ने गुरुकुल की यात्राएँ की। रेम्जे मैक्डानल (जो बाद में ब्रिटेन के प्रधानमन्त्री बने) ने भी गुरुकुल कांगडी की यात्रा की तथा मोहनदास कर्मचन्द गांधी सन् १९१५ में दक्षिण अफ्रीका से भारत आने के पश्चात् महात्मा मुंशीराम (स्वामी जी ने अभी तक संन्यास नहीं लिया था।) से भेंट करने के लिए गुरुकुल गए। महात्मा मुंशीराम जी ने गांधी जी के आन्दोलन में गुरुकुल के ब्रह्मचारियों द्वारा मजदूरी कर अर्जित की गई राशि सहायतार्थ भेजी थी। गांधी जी की यह गुरुकुल यात्रा उसी के कृतज्ञतास्वरूप थी। इसी यात्रा में गांधी जी गुरुकुल से महात्मा का सम्बोधन प्राप्त कर लौटे, यह सम्बोधन इसके पश्चात् उनके नाम का अंग ही बन गया। यह यात्राएं इतिहास की महत्त्वपूर्ण घटनाएँ तो हैं ही, ये स्वामी जी को अपने समकालीन व्यक्तित्वों की अपेक्षा कहीं अलग आसन प्रदान करती हैं।

स्वामी श्रद्धानन्द के विराट् व्यक्तित्व का दर्शन हमें सिखों द्वारा चलाए गए गुरु का बाग सत्याग्रह में सम्मिलित होकर जेल यात्रा करने में होता है। स्वामी जी को यह श्रेय प्राप्त है कि उन्होंने दो बार अकाल तख्त से सिख संगत को सम्बोधित किया था। जेल जाने से पूर्व तथा जेल से छूटकर आने पर आग्रहपूर्वक उन्हें अकाल तखत ले जाकर पुनः संगत को सम्बोधित करने का अवसर प्रदान किया गया।

४ अप्रैल सन् १९१९ को दिल्ली की जामा मस्जिद के मिम्बर से वेदमन्त्र का उच्चारण कर व्याख्यान देकर स्वातन्त्र्य समर में हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रबल प्रेरक रूप में स्वामी जी दिखाई देते हैं। यह भी स्मरणीय है कि ६ अप्रैल १९१९ को दिल्ली की फतहपुरी मस्जिद में भी स्वामी जी का व्याख्यान कराया गया था। मस्जिद के मिम्बर से आर्यसमाजी तो दूर किसी उदार हिन्दू को भी आज तक सम्बोधन करने का अवसर सुलभ नहीं हो सका है, किन्तु यह विडम्बना ही है कि उनकी इहलीला का संवरण भी एक धर्मान्ध मुसलमान अब्दुल रशीद की गोली से हुआ।

सन् १९२३ के प्रारम्भ में देश के कुछ हिस्सों (मुलतान, अमृतसर आदि) में हिंसक साम्प्रदायिक दंगे हुए। उसके बाद मुस्लिम समुदाय को संगठित करने के लिए मुस्लिम नेतृत्व द्वारा तंजीम और तबलीग के रूप में आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया गया। इसके पश्चात् हिन्दुओं को संगठित करने के प्रयास तेज हुए। हिन्दू धर्म छोड़कर इस्लाम में गए हुओं की वापिसी के लिए 'शुद्धि आन्दोलन' चलाया गया। स्वामी श्रद्धानन्द ने इस संगठन के मुखिया की भूमिका का निर्वाह किया। आगरा के आसपास के क्षेत्र में इस्लाम स्वीकार किए हुए राजपूतों (मलकानों) को हजारों की संख्या में शुद्ध कर पुनः हिन्दू धर्म में वापिस लाया गया। स्वामी श्रद्धानन्द की इस शुद्धि में अग्रणी भूमिका थी।

मलकानों की शुद्धि को लेकर महात्मा गांधी से हुए वैचारिक मतभेद के कारण कांग्रेस से त्यागपत्र देने में स्वामी जी ने किञ्चित् भी संकोच नहीं किया।

लगभग तीन दशक तक आर्यसमाज का मञ्च स्वामी जी के प्रभा मण्डल से पूरी तरह प्रभावित रहा है। उनके विचारों से सहमत/असहमत तो हुआ जा सकता था, किन्तु उनकी उपेक्षा सम्भव नहीं थी। अनेक आर्यनेता उनसे असहमत तो रहे किन्तु उनकी बात अनसुनी नहीं रही। किसी भी संगठन की जीवन्तता के लिए वैसा उत्साह एवं शौर्य अपरिहार्य है। इसकी उपेक्षा करके कोई संगठन या समाज अपना विस्तार नहीं कर सकता। आज आर्यसमाज को अपने विस्तार के लिए स्वामी श्रद्धानन्द सदृश उत्साह एवं शौर्य से युक्त व्यक्तित्व की आवश्यकता है। इसी के सहारे संगठन समृद्ध होते हैं। कवि के शब्द हैं-

शीश जिनके धर्म पर चढे हैं।
झण्डे दुनियां में उन्हीं के गडे हैं।।

डॉ. वेदपाल

आभार - अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द के बलिदान दिवस २३ दिसम्बर के उपलक्ष्य में इस अंक की अधिकांश सामग्री प्रसिद्ध विद्वज्जन के पुराने प्रकाशित लेख एवं कविता महत्त्वपूर्ण होने के कारण आभारपूर्वक प्रकाशित किए जा रहे हैं।

-सम्पादक

अग्नि सूक्त-१८

प्रवचनकर्त्ता- डॉ. धर्मवीर

लेखिका - सुयशा आर्य

प्रिय पाठक! परोपकारी पिछले कई वर्षों से आपकी सेवा में डॉ. धर्मवीर जी के वेद प्रवचनों को प्रकाशित कर रही है। इसी शृंखला में ऋग्वेद के प्रथम सूक्त 'अग्निसूक्त' की व्याख्यान माला प्रकाशित की जा रही है। प्रवचनों को लेखबद्ध करने का कार्य डॉ. धर्मवीर जी की ज्येष्ठ पुत्री श्रीमती सुयशा जी कर रही हैं। -सम्पादक

यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि। तवेत्तत्सत्यमङ्गिरः।।

मन्त्र में परमेश्वर को अग्नि शब्द से सम्बोधित किया गया है। मन्त्र का ऋषि मधुच्छन्दा, मन्त्र का देवता अग्नि, मन्त्र का छन्द गायत्री। यह ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के प्रथम सूक्त का छठा मन्त्र है। इसकी थोड़ी चर्चा हमने पीछे की और शेष चर्चा को यहाँ कर रहे हैं। हमने देखा था यहाँ दो सम्बोधन हैं। एक सम्बोधन तो अग्ने है, लेकिन अग्नि को एक विशेषण और दिया है- अङ्ग। वो प्रिय है, प्रिय होने से उसे अङ्ग कहा है। संस्कत में अङ्ग शब्द का अर्थ प्रिय होता है। तो कहते हैं,

अङ्ग अग्ने, त्वं भद्रं करिष्यसि,

हे अग्नि तुम भद्र करते हो, तुम निश्चित रूप से भद्र करोगे। भद्र जैसा बताया था, **यत् वै पुरुषस्य वित्तं तत् भद्रम्**। हमारा धन हमारा कल्याण करनेवाला हो। **मनुष्यस्य प्रजा भद्रम्** मनुष्य की जो सन्तान है वो उसका कल्याण करने वाली हो। **गृहा भद्रं** मनुष्य के घर, आवास के स्थान भद्र हों, कल्याण करनेवाले सुख देनेवाले हों। तो यह जो भद्रता है, यह कल्याण है, यह कौन देता है? तो कहता है अङ्ग अग्ने। यह सब भद्र संसार में है सब तेरे द्वारा ही होता है। कोई मनुष्य किसी को देता है तो उसका कुछ लाभ समझकर देता है या किसी को अपना समझता है तब उसको देता है। संसार में लाभ के लिए देने को व्यापार कहते हैं और अपने लिए देनेवाले को उपहार कहते हैं, भेंट कहते हैं। तो परमेश्वर हमें कैसे दे रहा और बाकी वह व्यवहार में रहा है। अर्थात् जो-जो हमारे कर्म जैसा-जैसा हमने किया है, वैसा-वैसा वो हमको देता है। हमने जो किया है उसको कैसे बताया जाए तो यहाँ उसके लिए एक बहुत अच्छा शब्द आया है। यहाँ कहते हैं **दाशुषे भद्रं करिष्यसि**। एक अर्थ है दाशुषे देनेवाले के लिए और मोटा अर्थ है दान देनेवाले का कल्याण करते हैं। जैसे आप यज्ञ कराते हैं और पण्डित आपको आशीर्वाद देता है, आप उसे दक्षिणा देते हैं। तो कहा कि आप कल्याण करते हो तो दाशुषे करते हो, देनेवाले का करते हो। तो कहा कि तू दाशुषे करता है, जो तुझे देता है तू उसे देता है। देखने में बात बड़ी विचित्र लगती है कि परमेश्वर का इससे क्या सम्बन्ध कि हम उसे दें तब वो हमें दे। हाँ निश्चित रूप से। दुनिया में कोई भी वस्तु किसी को भी, कभी भी, कहीं भी बिना मूल्य के नहीं मिलती, मुफ्त नहीं मिलती। हम जिसको मुफ्त भी समझते हैं वो भी वास्तव में होता नहीं है। कहीं हमें समय देना होता है, कहीं साथ देना होता है, कहीं बदले में करके देना होता है, कहीं मूल्य देना होता है, कहीं वस्तु देनी पड़ती है। अर्थात् इस संसार में बिना कुछ दिए कुछ भी प्राप्त नहीं होता है। आप उसे किस रूप में, कब दे रहे हो इसमें अन्तर हो सकता है। एक व्यापार होता है जिसमें आज किया है और अभी ही फल मिल रहा है, अभी हमने वस्तु दी, अभी हमको लाभ हो गया, अभी हमने भोजन लिया, भेजन करके भूख मिट गयी, कपड़ा लिया, गर्मी-सर्दी मिट गयी। तो यह भद्र तो हमारा हो रहा है, किन्तु किस नाते हो रहा है- जिसने मूल्य दिया है उसको दिया जा रहा है आपको मूल्य तो देना है, पैसे के रूप में, श्रम के रूप में, कर्म के रूप में, वस्तु के रूप में, समय के रूप में यह हमारा कोई भी कारण बन सकता है।

नियम है **भद्रं करिष्यसि** परन्तु दाशुषे तू कल्याण तो करता है, लेकिन दाशुषे का लेकिन देनेवाले का कल्याण करता है। तो यहाँ भी वही बात है कि परमेश्वर हमें दो

तरह से दे रहा है, कभी-कभी परमेश्वर के देने को लेकर मन में विचार उठता है, जब अगले ने मूल्य लेकर ही दिया है, मेरे कर्म का फल ही है फिर उसका मेरा सम्बन्ध क्या? जैसे एक व्यारी से मेरा क्या सम्बन्ध होता है? मैंने व्यापारी को मूल्य दिया है और व्यापारी ने मुझे वस्तु दी है तो उसके बाद वह मुझे याद नहीं रखता मैं उसे याद नहीं रखता। लेकिन जब तक मूल्य चुकाया न जाए, जब तक उधार मिल न जाए तब तक मनुष्य न भूलता है न भूलना चाहता है। यदि कोई मुझसे बिना मूल्य वस्तु ले गया है तो मैं उसे याद रखना चाहता हूँ, उसे लिखकर रखता हूँ कि यह उधार है, यह लौटकर आना है और जब मुझे पूरा मूल्य दे देगा, तब मुझे स्मरण रखने की आवश्यकता नहीं है। जब मैंने किसी वस्तु का मूल्य चुका दिया है तो मैं याद नहीं रखता कौन सी दुकान से खरीदी थी, कितने में खरीदी थी। मेरा मूल्य चला गया, वस्तु मेरी हो गयी, फिर मुझे स्मरण की आवश्यकता नहीं है। यदि मैं कम वस्तु लेकर आया हूँ या मुझे दुकानदार को पैसे चुकाने हैं तो मुझे भी याद रखना पड़ेगा और दुकानदार को भी याद रखना पड़ेगा तो हम भगवान् को याद रखते हैं और भगवान् हमें देता है, क्योंकि उसका हमारा जो व्यापार है वो नगद का नहीं, उधार का है। उधार का इतने ही अर्थ में है कि जैसे ही मैं कर्म करूँगा उचित समय पर मुझे उसका, उचित फल मिल जाएगा तो मेरा कर्म करना, यह मेरा मूल्य है और मेरा फल पाना, यह उसकी वस्तु है। तो इस दृष्टि से जब हम देखते हैं तो भद्र तो भगवान् करता है, लेकिन दाशुषे देनेवाले के लिए करता है। जो पुरुषार्थी नहीं है, कर्मशील नहीं है, उसका नहीं करता। वह भद्र जो करनेवाला है, हमारे लोग यह समझते हैं कि कब तो हम कर्म करेंगे, कब तो उसका फल मिलेगा, लेकिन हम यह भूल जाते हैं कि फल तो हमें हर समय मिल रहा है और हम हर समय कर भी रहे हैं। अन्तर कितना है- हमें जो फल मिल रहा है, इसके कर्म का पता नहीं और जो कर्म कर रहे हैं, इसके फल का हमें मालूम नहीं। दोनों चीजें साथ-साथ चलती हैं। तो फल तो इसलिए है कि मैंने कुछ किया नहीं होता तो मिलता नहीं। मैंने किया है वह फल है। जितना सच यह है, उतना ही सच यह भी है कि जो भी मैं आज कर रहा हूँ वो अच्छा कर रहा हूँ, बुरा कर रहा हूँ, कम कर रहा हूँ, अधिक कर रहा हूँ, इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता, जितना जब किया है उतना उसका फल अवश्यंभावी है। मैं कर रहा हूँ, इसिलए मुझे फल मिलेगा और मुझे फल मिल रहा है इसलिए मैंने किया है। अब इसमें समझने की जो चीज है कि फल एक तरह का नहीं है और मैं कर्म भी एक तरह के नहीं कर रहा तो दोनों का सम्बन्ध बनेगा कैसे? क्या किसी भी कर्म का कुछ भी फल बन जाएगा? या जो फल हमें मिल रहा है किसी भी कर्म का हो जाएगा, ऐसा नहीं हो सकता। जब कर्म भी अनेक प्रकार हैं और फल भी अनेक प्रकार के हैं तो हमें चिन्तन करना होगा कि उचित कर्म का अनुचित फल नहीं मिल सकता और अनुचित फल मिला है तो उसके लिए मेरा कोई उचित कर्म दोषी नहीं हो सकता। तो जो मेरा कर्म है और जो मेरा कर्मफल है इनमें परस्पर सम्बन्ध है और पहला सम्बन्ध यह है कि मैंने यदि मैंने अच्छे कर्म किए हैं तो मुझे अच्छा फल मिलेगा और यदि मैं बुरे कर्म करूँगा तो मुझे निश्चित रूप से बुरा फल मिलेगा। यह यदि हमारे मस्तिष्क में स्पष्ट हो जाए तो हमें यह जो सन्देह है, जो हमें मिला है हम उसे यह नहीं समझते कि यह मेरे किसी कर्म का परिणाम है। दु:ख मिलता है तो यह समझते हैं कि भगवान् दु:ख दे रहा है, उसकी मर्जी है इसलिए दे देता है। जैसा कि इस्लामिक सिद्धान्त में उसकी इच्छा है, वह कर सकता है, सामर्थ्य है इसलिए कर सकता है। वो दु:ख भी दे सकता है, सुख भी दे सकता है, तो ऐसी स्थिति में उसे प्रसन्न करने का काम करना पड़ता है। काम के उचित होने का, अनुचित होने का प्रश्न नहीं होता और यदि आपने मान लिया कि उचित कर्म का उचित फल देता है, तो फिर उसकी इच्छा नहीं चलेगी, फिर इच्छा का कोई अर्थ ही नहीं रह जाएगा। इसलिए यह कहना कि परमेश्वर जो चाहे वह कर सकता है, जो चाहे वह फल दे सकता है। यदि आप ऐसा कहेंगे तो उसे बिना किए भी फल देना चाहिए, गलत किए का सही फल देना चाहिए, सही कर्म का गलत फल देना चाहिए। तो फिर भगवान् के राज्य में और राजा गवरगण्ड में अन्तर क्या रहा? गवरगण्ड के राज्य में भी एक ही नियम था, किसी को भी दण्ड दिया जा सकता था तो

किसी को भी पुरस्कार दिया जा सकता था। सभी वस्तु एक ही भाव चाहे आप बादाम खरीदो चाहे आप मिट्टी खरीदो, एक ही भाव। चाहे सोना खरीदो चाहे लोहा, एक ही भाव तो इसलिए नियम बन ही नहीं सकता कि परमेश्वर जो चाहे वो कर ले परमेश्वर को एक नियम से करना पड़ेगा, उसे फल देना ही देना है और हमें कर्म करना ही करना है, तो जैसे कर्म का और उसके फल का सम्बन्ध है वैसे ही अच्छे कर्म का अच्छे फल से और अच्छे फल का अच्छे कर्म से सम्बन्ध है। अच्छा फल यदि मिल रहा है तो निश्चित माना जाएगा कि मैंने पुण्य कर्म किए हैं, नहीं तो यह मेरा अच्छा फल नहीं हो सकता। उसी तरह से यदि मुझे दु:ख, कष्ट, पीड़ा मिल रही है तो मेरे अन्दर एक स्वाभाविक बात आनी चाहिए कि मैंने निश्चित कुछ बुरा, अनुचित किया है, पाप किया है जिसका मुझे यह फल मिल रहा है। तो यहाँ पर जो शब्द हैं, **दाशुषे भद्रं करिष्यसि**, तो परमेश्वर भला करता है, भला करना उसका स्वभाव है। हमारी समझ में यह नहीं आता कि परमेश्वर ने मुझे दु:खी किया है तो वह भला करनेवाला कैसे है? इसलिए मुझे लगता है कि वह भला करता है और नहीं भी करता लेकिन मैं यह भूल जाता हूँ कि मेरा जो बुरा हो रहा है या बुरा दिख रहा है, यह भी तो मेरा भला ही है, क्योंकि भले के साथ भला करना और बुरे के साथ बुरा करना यह भी भलाई ही है। तो यह नियम बना कि अच्छा कर्म किया है तो अच्छा फल मिलेगा और बुरा कर्म किया है तो बुरा फल मिलेगा। यह जो शाश्वत सिद्धान्त है, इसका इस मन्त्र में प्रतिपादन है और यह सारा सिद्धान्त यहाँ एक शब्द 'दाशुषे' में निहित है। भद्रं करिष्यसि तू सबका भला करेगा, तो सबका भला तो सदा ही हो जाना चाहिए, लेकिन दाशुषे करिष्यसि, तू देनेवाले का करेगा। तो इसलिए दोनों में अन्तर है, अच्छा करूँगा तो अच्छा होगा, अच्छा हुआ है तो अच्छा किया है, इसलिए मन्त्र कहता है–

यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि तवेत्तत्सत्यमङ्गिरः।

स्वामी विद्यानन्द सरस्वती वैदिक प्रचार ट्रस्ट

द्वारा परोपकारिणी सभा के माध्यम से प्रतिवर्ष आर्यसमाज के गुरुकुलों को सहायता राशि प्रदान की जाती है।

इस वर्ष निम्नांकित संस्थाओं को यह सहयोग राशि प्रदान की गई–

०१.	आर्ष कन्या गुरुकुल ट्रस्ट, हसनपुर, पलवल, हरियाणा	१०.०००/–
०२.	आर्ष कन्या गुरुकुल दाधिया, जि. अलवर, राजस्थान	१०.०००/–
०३.	सर्वदानन्द संस्कृत महाविद्यालय साधु आश्रम, अलीगढ़, उ.प्र.	१०.०००/–
०४.	महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मारक ट्रस्ट, टंकारा, गुजरात	१०.०००/–
०५.	महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल व गौशाला एम.डी.एस., जि. मेवात, हरियाणा	१०.०००/–
०६.	आर्य कन्या गुरुकुल शिवगंज, सिरोही, राजस्थान	१०.०००/–
०७.	कन्या गुरुकुल चामड़ अलीगढ़, उ.प्र.	१०.०००/–
०८.	श्रीमद् दयानन्द गुरुकुल विद्यापीठ गदपुरी, जि. पलवल, हरियाणा	२१.०००/–
०९.	श्री कृष्ण आर्ष गुरुकुल, देवलिया	१०.०००/–
१०.	श्रीमती परोपकारिणी सभा, अजमेर, राजस्थान	११.०००/–

रक्तरंजित है कहानी-

स्वामी श्रद्धानन्द पिंजरे में बन्दी बनाये गये

प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

मैं इन दिनों अत्यधिक व्यस्त हूँ। आयु के इकानवे वर्ष पूरे होने जा रहे हैं। जो कार्य मेरे पश्चात् कोई करनेवाला समाज में है ही नहीं, वे जितने निपटा सकता हूँ-एक-एक करके निपटा रहा हूँ। लिखते भी जा रहा हूँ और प्रूफ़ भी पढ़ने में लगा रहता हूँ। माननीय डॉ. वेदपाल जी ने स्वामी श्रद्धानन्द जी के बलिदान पर्व के उपलक्ष्य में अत्यन्त प्रेमपूर्वक इस अवसर पर लेख देने के लिये प्रेरित किया तो **स्वामी श्रद्धानन्द जी के पिंजरे में बन्दी बनने के शताब्दी वर्ष का एकदम ध्यान आ गया।**

बलिदान पर्व तो प्रतिवर्ष आता रहेगा। पिंजरे में बन्द होने की यह प्रथम शताब्दी है। आर्यो! धूमधाम से मनाओ।

ऑस्ट्रेलिया से जब डॉ. जे. जार्डन्स स्वामी जी के जीवन-चरित्र की सामग्री की खोज के लिये आये तो मुझसे पहले दिल्ली में भेंट हुई। तब दो विशेष बातें हुईं। पं. दुर्गादास शर्मा सम्पादक आर्यगजट आदि कई सज्जनों के सामने आपने मुझसे आर्यसमाज के आरम्भिककाल के महत्त्वपूर्ण ट्रैक्टों के बारे में पूछा तो मैंने कहा, ''ऐसे अधिकांश ट्रैक्ट मेरे पास हैं। दिखा सकता हूँ।''

आर्यसमाज नहीं जानता- फिर कहा, ''लन्दन में इण्डिया आफ़िस पुस्तकालय में स्वामी श्रद्धानन्द लिखित अपनी जेल की कहानी पर लिखी पुस्तक सूची रजिस्टर में तो है, परन्तु वहाँ पुस्तकालय में नहीं। भारत में न तो गुरुकुल काँगड़ी में और न ही सार्वदेशिक सभा में कोई इस विषय में कुछ जानता है और न ही गुरुकुल के स्नातकों को इसका कुछ अता-पता है। क्या आप कुछ जानते हैं?''

मैं दिखा सकता हूँ- मैंने उन्हें कहा, पुस्तक का नाम आपके पास ठीक-ठीक नहीं। मैं आपको अबोहर में यह दिखा सकता हूँ। यह सुनकर वह झूम उठे। मैंने कहा, मैंने अपने ग्रन्थ ''लौहपुरुष स्वामी श्रद्धानन्द'' में इसका उल्लेख भी किया है। उन्होंने झट वहीं एक बुक स्टॉल से यह ग्रन्थ क्रय कर लिया।

आपने कहा एक तो व्यक्ति मिला- आपने पं. दुर्गादास शर्मा आदि कई प्रतिष्ठित आर्यपुरुषों के सामने यह कहा, मैं समझता था कि आर्यसमाज सुशिक्षित व्यक्तियों का संगठन है, परन्तु आदिकाल के ट्रैक्ट मुझे कहीं भी कोई न दिखा सका। ईश्वर का धन्यवाद यह एक तो इस समाज में मिला जिसने यह करणीय कार्य कर दिखाया है।

'बन्दीघर के विचित्र अनुभव'- स्वामी श्रद्धानन्द जी के पिंजरे में बन्दी बनाये जाने के शताब्दी वर्ष में उनकी इस पुस्तक की प्राप्ति, प्रकाशन व प्रसार की कहानी संक्षेप में देकर आगे कुछ निवेदन किया जावेगा। आर्यसमाज गिदड़बाहा के प्राण मदनलाल जी तब कॉलेज के विद्यार्थी थे। नये-नये आर्यसमाजी बने। हृदय में बड़ा जोश व लगन थी। एक दिन मुझसे बोले, ''**एक लघु पुस्तक मुझे मिली है। उसका ऊपर का मुख पृष्ठ नहीं। लगता है कि स्वामी श्रद्धानन्द जी लिखित है और उसमें सिखों के लिये कारागार में जाने की कहानी है।**''

पुस्तक मुझे प्राप्त हो गई- मैंने झट से पुस्तक प्राप्त करके चैन पाया। उनको पुस्तक मिलने से पूर्व बता दिया कि उसका नाम ''**मेरे बन्दीघर के विचित्र अनुभव।**'' **यह मैं पहले ही जानता था।** मैंने समय गंवाय बिना उसे अबोहर के एक प्रेस में छपने भी दे दिया। दूर के किसी प्रेस में जाने का जोखम न उठाया। कहीं दूर के प्रेस में एक भी पृष्ठ गुम कर दिया गया तो फिर मैं क्या करूँगा। तब से लेकर चार-पाँच बार यह छप चुकी है। अब देश-विदेश में आर्यो में यह चर्चित है।

पिंजरे में बन्दी होने की कहानी है क्या? पाठकवृन्द! भारत के स्वराज्य संग्राम में कई नेता (विशेषकर के आर्यसमाजी) सरकार द्वारा लोहे के तंग पिंजरों में बन्दी बनाकर रखे गये।

राष्ट्रीय नेताओं में केवल स्वामी श्रद्धानन्द- देश के राष्ट्रीय स्तर के नेताओं में स्वामी श्रद्धानन्द जी ही ऐसे अकेले नेता थे जिन्हें गोराशाही ने लोहे के तंग पिंजरे में बन्दी बनाकर रखा।

पिंजरे में बन्दी क्यों बनाये गये? इस महत्त्वपूर्ण प्रश्न का उत्तर प्रश्न से भी कहीं अधिक रोचक व महत्त्वपूर्ण है। सिख बन्धुओं ने अन्याय के विरुद्ध लड़ाई में **'गुरु के बाग़ का मोर्चा'** नाम का एक सत्याग्रह चलाया। इसमें

सरकार ने सिख सत्याग्रहियों पर अत्यधिक अत्याचार किये। देश के अधिकांश हिन्दुओं की विशेष रूप से आर्यसमाजियों की सिखों से हार्दिक सहानुभूति थी। स्वामी जी महाराज ने अकाल तख़्त अमृतसर से सरकार के दमन के विरुद्ध एक ऐतिहासिक भाषण दिया। सिखों की माँगों के समर्थन में महाराज ने एक प्रभावशाली ओजस्वी भाषण ही नहीं दिया, प्रत्युत पूरी शक्ति से दल बल सहित आन्दोलन में आग में कूदने में आर्यसंन्यासी तैयारी करके स्वर्ण मन्दिर पहुँचा था। सरकार आर्यसंन्यासी के मनोभावों व निश्चय को जान गई। इसी भाषण के तुरन्त बाद वीर संन्यासी को बन्दी बनाकर लोहे के एक तंग पिंजरे में डालकर सिखों और आर्यों को एक नई चुनौती दे दी। क्रूरता की अति होने लगी।

आर्यों और सिखों की एतद्विषयक भूल- कोई भी सूझबूझवाला निष्पक्ष इतिहासकार आर्यों व सिखों की इस भूल को क्षमा नहीं कर सकता कि गुरु के बाग मोर्चा में स्वामी जी की भागीदारी, उनकी अद्‌भुत शूरता, पिंजरे में बन्दी बनने, कष्ट सहन तथा कुर्बानी को भुला दिया गया। आर्यों ने उनके इस आन्दोलन में भाग लेने के इतिहास पर क्या लिखा? उनके किसी भी जीवन-चरित्र में इसका किसने उल्लेख किया। मेरा साहित्य तो मात्र एक अपवाद है। **सिख भाइयों ने भी समय पाकर** स्वामी जी की शानदार कुर्बानी का कभी भूलकर भी उल्लेख नहीं किया। ऐसे इतिहास को विसार देना सिखों की परम्परा से एक घोर अन्याय है। सिख इतिहास के प्रेमी के रूप में बहुत प्रसिद्ध हैं। जब पिंजरे से स्वामी जी को मियाँवाली जेल भेजा गया था तब वहाँ नित्य प्रति सिखों के दीवान (सत्संग) के पश्चात् सिखों के सर्वमान्य नेता श्रीमान् मेहताबसिंह जी कहा करते थे, **''अब स्वामी जी सिख पन्थ को आशीर्वाद देंगे।''**

सिखों का वह प्यार और एक और भूल- मियाँवाली जेल से छोड़े जाने के पश्चात् जब स्वामी जी रेल द्वारा अमृतसर से होते हुये सीधे दिल्ली को जा रहे थे तो आर्यलोग दर्शन करने स्टेशन पर पहुँचे। **सिख नेता** भी स्टेशन पहुँचे, परन्तु दर्शन करने के लिये नहीं। सिखों ने अत्यन्त श्रद्धा तथा आदरभाव से महाराज को गाड़ी से उतारा और एक बार पुनः स्वर्ण मन्दिर ले गये। इस स्वर्णिम इतिहास को वर्तमान में सिख कैसे भूल गये? **यह प्रेम बडा दृढ़ घाती है।** मुझे तो सिखों का वह प्रेम नहीं भूलता और इतिहास की यह उपेक्षा बहुत अखरती है।

वह पिंजरा कैसा था?- स्वामी जी बहुत लम्बे ऊँचे थे। सिर उठाकर उसमें वह खड़े नहीं हो सकते थे। भला ऐसे उस स्वाभिमानी साधु को गोराशाही सिर झुका सकती थी? स्वामी जी टाँगें पसार कर उसमें सो भी नहीं सकते थे। काँगड़ी गुरुकुल में वनों में दिशा जंगल के लिये दूर खेतों में जाने के अभ्यासी को वहीं पिंजरे में गमले में मलमूत्र का विसर्जन करना पड़ता था। पीने के जल का घड़ा भी वहीं रखा जाता था और क्या-क्या इस सम्बन्ध में लिखूँ?

याद रखिये कि राष्ट्रीय नेताओं में अकाल तख़्त से सम्बोधन करनेवाला, सन्देश उपदेश देनेवाला, हुँकार भरनेवाला एक ही Non sikh ग़ैर सिख हुआ है और वे थे स्वामी श्रद्धानन्द जी।

शहीद दीनानाथ फ़िलॉसफर- इसी गुरु के बाग़ मोर्चा में उनके आर्यसमाजी भक्त श्रीयुत दीनानाथ फ़िलॉसफर का बलिदान भी हो गया। हमारे एक चाचा महाशय बस्तीराम गुरु के बाग मोर्चा की चर्चा करते हुये उनके बलिदान की कहानी भी सुनाया करते थे। उनको भी हम सब भूल गये।

चरण स्पर्श की होड़- जब न्यायाधीश ने स्वामी जी को दण्ड सुनाया तो उस समय कोर्ट में हिन्दू सिख भक्तों की भारी भीड़ थी। स्वामी जी के चरण स्पर्श करने की उनमें भारी प्रतिस्पर्धा व भीड़ के कारण पुलिस की परेशानी बढ़ गई, तब पुलिस अधिकारी ने कहा, ''स्वामी जी आप बाहर पेड़ के नीचे खड़े हो जावें, ताकि सब जन आपके चरण स्पर्श कर सकें।''

कोर्ट देर रात को खुला रहा- पश्चिमी पंजाब में गुरुकुल भूमि के एक दानदाता ने अपनी भूमि वापिस हथियाने के लिये केस कर दिया। मुसलमान जज ने स्वामी जी की गाड़ी लेट होने और फिर मुलतान में भक्तों द्वारा शोभा यात्रा के कारण अन्धेरा होने, रात पड़ने तक कोर्ट खुला रखा ताकि स्वामी जी की साक्षी ली जा सके। ऐसा अनुपम इतिहास है! क्या-क्या लिखें। शेष फिर कभी।

कितने शहीद हो गये!- देश विभाजन से पूर्व श्री देशराज जी के एक नये गीत की एक पंक्ति आर्यसमाजी बहुत जोश से सत्संगों उत्सवों में गाते थे।

''कितने शहीद हो गये कितनों ने सिर कटा दिया''

इस पंक्ति में आर्यसमाज के रक्तरंजित इतिहास को स्मरण करवाया गया है। दिसम्बर मास में ही एक स्वामी

श्रद्धानन्द जी का ही बलिदान तो नहीं हुआ। महाराष्ट्र में उदीयमान आर्यवीर वेदप्रकाश ने उठती जवानी में सिर कटाकर हैदराबाद ही नहीं देशभर में आर्यों को धर्मरक्षा, देशरक्षा, लोकोपकार के लिये जीवन अर्पित करने का पाठ पढ़ाया। आपके बलिदान से सारे देश में आर्यसमाज के जय-जय कार होने लगा। हैदराबाद में तो बलिदानों की अखण्ड परम्परा चल पड़ी। देशभर में असंख्य जन्म लेनेवाले बच्चों को राजपाल नाम दिया गया।

भाई श्यामलाल- हैदराबाद स्टेट के महान् बलिदानी नेता वीर शिरोमणि श्यामभाई का बलिदान जेल में विष देने से हो गया। भाई जी को रोग तो बाल्यकाल से ही चिपक चुका था, परन्तु उनकी दहाड़ से राजभवनों की दीवारें काँपा करती थी। एक दलित वर्ग की विधवा माँ की पुत्री का विधर्मियों ने शासकों के सहयोग से अपहरण करके उसे 'आयशा' नाम देकर किसी से विवाह करवा दिया। दुखिया माँ की पुकार कौन सुने? श्यामभाई ने यह लम्बी लड़ाई लड़ी। एक पैर कोर्ट में तो दूसरा कचहरी व थाने में। देशभर में किसी भी राजनेता ने किसी दलित देवी के अपहरण में कोर्ट में जेल में कोतवाली में धक्के खाये क्या? अन्त में भाई श्यामलाल तथा उनके शिष्यों की जीत हुई। अभियोग समाप्त होने पर आर्यों की टोली ने दीन दलित की रक्षा के लिये जीने मरने का पाठ पढ़ाकर एक नया इतिहास रचा। किसी भी राजनेता पर कभी ऐसा केस न चला। ऐसी आपदा न आई। ऐसे कष्ट दलित देवी के लिये उठाने का उदाहरण राजनीतिक दल कहाँ दे सकते हैं?

ठाकुर रोशन- गुरुकुल ज्वालापुर महाविद्यालय से एक आर्ययुवक चौक प्रयाग के समाज मन्दिर पहुँचा और कहा कि यहाँ मेरे पिता ठाकुर रोशन सिंह को फाँसी दण्ड दे दिया गया है। अन्तिम समय तक वे सन्ध्या हवन और व्यायाम के नित्य नियम को कड़ाई से निभाते रहे। हम आर्यसमाजी हैं। क्या मेरे पिताजी हुतात्मा रोशनसिंह जी का वेदोक्त रीति से अन्तिम संस्कार करने की आर्यसमाज व्यवस्था करेगा?

इससे पहले कि पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय जी आदि कोई बड़ा अधिकारी बोले सरकार के आतंक, दमन तथा दलन की चिन्ता न करते हुए एक आर्यनेता बोल पड़ा मैं इस क्रान्तिवीर आर्यपुरुष का दाहकर्म वैदिक रीति से करवाऊँगा। जब लोग भयभीत होकर क्रान्तिकारियों के बलिदान को नमन करने की बजाय सरकार की चाटुकारिता कर रहे थे एक आर्ययुवक का यह साहस वन्दनीय था। यह युवक था पं. गंगाप्रसाद जी उपाध्याय का विद्वान् द्वितीय पुत्र श्री विश्वप्रकाश।

मुझे स्वयं विश्वप्रकाश जी ने यह प्रसंग सुनाया था। आर्यसमाज में मेरे निरन्तर प्रयत्न करने पर भी इस घटना का प्रचार पूरे जोश से समाज नहीं कर रहा।

वीर रामप्रसाद बिस्मिल- क्रान्तिकारी आन्दोलन के एक महानायक को आर्यसमाजी बनानेवाला युवक विद्वान् इन्द्रजीत् भी परखा व तपा हुआ आर्यपुरुष था। पटियाला राजद्रोह के उस भीषण केस में उसने सर्विस के जाने की और गोराशाही की धमकियों की चिन्ता न की। महाशय कृष्ण जी के एक सखा स्वामी सोमदेव जी ने इन्हें क्रान्तिपथ का पथिक बना दिया। श्री भाई परमानन्द जी की देशहित में यातनाओं के इतिहास ने इसे बलिदान पथ का पथिक बनाकर क्रान्तिकारी दल का महानायक बना दिया।

भारतमाता के इस सपूत पर जब काकोरी के डाका का केस चला था तो पूज्य भाई परमानन्द भी निर्भय होकर इनकी एक पेशी पर गये थे। यह घटना मैंने दैनिक 'तेज' उर्दू की फाईल में पढ़कर प्रचारित की थी। पाठकवृन्द! यह मत भूलें कि देश भर में काकोरी केस अभियुक्त की पेशी के समाचार अधिकांश समाचार-पत्रों में 'काकोरी के डाका की अभियुक्तों की पेशी' जैसे शीर्षक देकर छपा करते थे। समाचार-पत्रों व तत्कालीन साहित्य में 'डाका' 'डाका' की दुहाई पाई जाती थी।

मैंने स्वामी श्रद्धानन्द महाराज की देन दैनिक 'तेज' समाचार में इसके विपरीत क्रान्तिकारियों के नाम के साथ आदरसूचक शब्द जोड़कर स्थूल अक्षरों में रामप्रसाद आदि प्राणवीरों के समाचार तेज की फाईल में पढ़े हैं। फाँसी के फन्दे को चूमने से पूर्व गायत्री जप करते हुये, सन्ध्या हवन रचाकर मातृभूमि का यह दुलारा प्यारा बलिदान का उच्च आदर्श स्थापित करके एक स्वर्णिम बन गया।

रामप्रसाद 'बिस्मिल' उर्दू हिन्दी दोनों भाषाओं का महान् कवि तथा फाँसी की कोठरी में अत्युत्तम आत्मकथा लिखनेवाला श्रेष्ठ आर्य साहित्यकार भी था। आप उसके क्रान्ति गीतों का पं. चमूपति जी के दयानन्द आनन्द सागर से तुलना कीजिये। दयानन्द आनन्द सागर की गहरी साहित्यिक छाप उनके काव्य पर आप पायेंगे।

वह सरकारी कर्मचारी- कारागार का वह छोटा-सा कर्मचारी-पहरेदार जिसने बिस्मिल की आत्मकथा कारागार से बाहर निकाली वह भी हमारे लिये वन्दनीय है। यदि वह पकड़ा जाता तो क्या वह बच पाता? माँ भारत के उस लाल को भी मेरा नमन हो।

आर्यवीर यशपाल चल बसे- स्वामी सम्पूर्णानन्द जी का चलभाष प्राप्त हुआ। आपने कहा कुछ दिन यहाँ गुरुकुल में आ जावें। आपको यहाँ साथ लाने के लिये किसी को भेज दूँगा। मैंने कहा आना चाहता हूँ। कुछ आवश्यक प्रूफ़ पढ़ लूँ फिर बताऊँगा। ज्येष्ठ भ्राता यश जी से एक बार मिलने की उत्कट इच्छा है। क्या पता फिर मिलन हो कि न हो। दो दिन पश्चात् समाचार मिल गया कि प्रिंसिपल यशपाल मेरे ज्येष्ठ भ्राता जी ९४ वर्ष की आयु में चल बसे। वह जहाँ भी गये आर्यसमाज की स्थापना करने, आर्यमन्दिर के निर्माण और आर्य संस्थाओं के निर्माण तथा विकसित करवाने में शक्ति लगा दी।

कुल परम्परा से पूज्यपाद स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज की भक्ति व श्रद्धा बपौती में प्राप्त की। उन्हीं को आदर्श मानकर शीश तली पर धर कर आर्यधर्म व आर्य जाति के लिये न जाने कहाँ-कहाँ सिर धड़ की बाज़ी लगाकर इस आर्यवीर ने इतिहास रचा। मेरी आँखों के सामने आर्यसमाज स्यालकोट का वह दृश्य है, जब मुस्लिम लीगियों ने स्कूल की छुट्टी के ठीक समय आर्यस्कूल तथा आर्यकन्या विद्यालय पर आक्रमण कर दिया।

मेरी आँखों के सामने सबसे पहले आक्रमणकारी उन्मादी गुण्डों पर आर्यवीर दल का लम्बा हठीला यह आर्यवीर बिजली सदृश टूट पड़ा।

जब स्वामी स्वतन्त्रानन्द आग में कूद पड़े- वहीं आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव पर एक वर्ष पहले उसी दिशा से उन्मादी नारे लगाते हुये आक्रमण करने आ रहे थे। श्री तिलकराज आर्यप्रकाशन वाले दौड़कर आर्यमन्दिर में सामने स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी को सूचित करने पहुँचे कि आक्रमणकारी आ रहे हैं। स्वामी जी कुछ सज्जनों से संवाद कर रहे थे। झट से उत्सव की ओर चल पड़े कि देखता हूँ कौन आक्रमण करता है? स्वामी जी महाराज के सड़क पर आते ही जो साहसी रणबाँकुरे उन्मादियों का सामना करने मैदान में उतर आये आर्यवीर यशपाल उनमें भी सबसे आगे था।

फिर भला किस की हिम्मत थी कि आर्यसंन्यासी पर वार करता? वर्तमान काल में सारे देश के आर्यसमाजियों में सबसे अधिक बार जेल यात्रा करनेवाला आर्यवीर यशपाल ही था। देश जाति की रक्षा व धर्मसेवा के लिये वह अनेक बार जेल गया। एक बार उनकी पत्नी भी बन्दी बनाई गई। जब हिन्दी रक्षा सत्याग्रह में यशपाल जेल में था तब उस जेल में आर्यदेवियों का जत्था वहाँ कारागार में पहुँच गया। उसमें हमारी माता जी भी थीं। एक द्वार में हमारी माँ को जेल के भीतर किया गया तो उस समय यशपाल को दूसरे द्वार से रिहा किया गया।

उसने अपनी माता को जेल के भीतर जाते तो देखा, परन्तु पुलिस ने इन्हें चरण स्पर्श करने नहीं दिया।

जम्मू कश्मीर में सत्याग्रह में- जब जम्मू कश्मीर सत्याग्रह में डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी, वैद्य गुरुदत्त जी का जत्था शेख अब्दुल्ला की जेल में गया तब अगला जत्था जम्मू में बन्दी बनने के लिये बार्डर पर पहुँचा। इन्हें वहीं सीमा पर बन्दीबना लिया गया। यशपाल तब कॉलेज में एफ. ए. में पढ़ता था और कक्षा में योग्यतम विद्यार्थी था। श्री शान्ताकुमार का जत्था भी इन्हीं के साथ जेल गया। तब यशपाल को फाँसी की कोठरी में भी रखा गया

जब मुझे कोई मिल नहीं सकता था- गुरुद्वारा सिग्रेट केस में जब मुझे यातनायें दी जा रहीं थीं तब कोई भी हिन्दू मुझसे मिल नहीं सकता था। आतंक कैसा था यह मत पूछिये। यशपाल साहस करके उस कसाईखाने में मुझे मिलने को गया तो उन्हें मुझसे कतई मिलने न दिया गया। उनकी समय-समय पर जेल जाने की कहानियाँ क्या-क्या सुनाऊँ। यह कहानी बहुत लम्बी है।

बिना F.I.R. के सबसे लम्बा केस- आतंकवाद के दिनों में आप पर बिना F.I.R. के सबसे लम्बा केस चलाया गया। बहुत सताया गया। यशपाल न बोला और न डोला। ये कहानियाँ, यह इतिहास बहुत लम्बा है। कभी फिर लिखूँगा। वर्षों से उनका यह नियम था प्रातः नित्य नियम के पश्चात् सारे दिन आर्यमन्दिर में ही रहते। सब मिलनेवालों से संवाद करते। घरवाले भोजन के लिये बुलाकर लाते। प्रति मास दान देते रहते। उनके संघर्ष का इतिहास आर्यसमाज में अनूठा है। यह सब कुछ महाराज स्वतन्त्रानन्द के प्रताप से झेलते रहे।

- वेद सदन, नई सूरज नगरी, अबोहर (पंजाब)

मेरे पिता

श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति

[यशस्वी पत्रकार एवं लेखक श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति ने अपने पूज्य पिता स्वामी श्रद्धानन्दजी के जीवन से सम्बद्ध कुछ स्वानुभूत एवं प्रामाणिक संस्मरण लिखे थे, जो सन् १९५३-५५ में 'गुरुकुल पत्रिका' के विभिन्न अंकों में क्रमशः प्रकाशित हुए थे। बाद में इन्हें 'मेरे पिता' के नाम से पुस्तक का रूप दे दिया गया था। यहाँ इसी संस्मरणावली में से स्वामीजी के व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों को प्रदर्शित करनेवाली कुछ अविस्मरणीय स्मृतियाँ प्रस्तुत की जा रही हैं। - सम्पादक]

भगवत्कृपा पर भरोसा

सद्धर्म-प्रचारक में सनातन-धर्म सभा पंजाब के उपदेशक पं. गोपीनाथ जी के सम्बन्ध में एक छोटा सा सम्पादकीय नोट प्रकाशित हुआ। उस नोट में गोपीनाथजी के चरित्र पर आक्षेप किया गया था। जिस समय सद्धर्म प्रचारक में वह नोट प्रकाशित हुआ, उस समय पिताजी जालन्धर में नहीं थे। सहायक सम्पादक लाला वजीरचन्दजी ने वह नोट लिखा था। पं. गोपीनाथजी को इससे पूर्व लाहौर के अंग्रेजी के एक अखबार के विरुद्ध मानहानि के दावे में सफलता प्राप्त हो चुकी थी। सफलता द्वारा बढ़े हुए उत्साह से प्रभावित होकर पं. गोपीनाथजी ने सद्धर्म प्रचारक के सम्पादक और प्रकाशक पर मानहानि का दावा कर दिया।

जिस समय पिताजी को लाहौर की अदालत का सम्मन मिला, वे दौरे पर थे और बीमार थे। जुकाम और बुखार से पीड़ित होते हुए भी प्रचार के जोश में वे कई मास से निरन्तर घूम रहे थे। सम्मन पाकर वे लाहौर पहुँचे।

इस मुकद्दमे ने प्रारम्भ से ही एक सार्वजनिक रूप धारण कर लिया था। पंजाब में आर्यसमाज में और सनातन-धर्म सभा में जो विचार-संघर्ष वर्षों से चल रहा था, यह उसकी पराकाष्ठा थी। दोनों ओर बड़ा जोश था।

मुकद्दमे के अनुसार ही वकील किये गये थे। पं. गोपीनाथजी की ओर से एक अंग्रेज वकील थे, जो उस समय लाहौर में वकीलों के सरदार समझे जाते थे। पिताजी की सफाई के लिए हमारे मामा रायजादा भगतरामजी जालन्धर से गये थे।

मामाजी जालन्धर से पिताजी का मुकद्दमा लड़ने के लिए लाहौर गये। पहली पेशी में पं. गोपीनाथजी की गवाही होनेवाली थी। मामाजी ने पिताजी से पूछा 'मुंशीरामजी, कोई मसाला भी है या नहीं?' जिरह में क्या पूछा जाएगा? मसाला कुछ था ही नहीं, दोनों चिन्तित थे कि मुकद्दमा कैसे लड़ा जाएगा? पिताजी ने उत्तर दिया- 'भाई मसाला तो कुछ भी नहीं, एक ईश्वर पर भरोसा है। चलो, कोई रास्ता निकल आयेगा।'

दोनों बन्धु खाली हाथ अदालत में जा पहुँचे। पं. गोपीनाथजी को अपनी जीत का दृढ़निश्चय था। वे शेर की तरह छाती ताने हुए आये और अपना बयान स्पष्ट शब्दों में दिया। इतने में लंच का समय हो गया। अदालत उठने की तैयारी करने लगी और रायजादा भगतरामजी इस्तगासे के बयान पर दृष्टि गढ़ाकर देखने लगे कि लंच के बाद जिरह की जायेगी।

आगे जो हुआ, वह यथासम्भव पिताजी से सुने हुए शब्दों में ही सुनाता हूँ 'मैं पीठ पीछे हाथ रखे खड़ा था कि इतने में मेरे हाथ को किसी ने छुआ और कोई चीज पकड़ाई। मैंने उस चीज को पकड़ने के लिए हाथ फैलाया तो किसी ने कागजों का एक पुलिन्दा मेरे हाथ में दे दिया। मैंने यह समझकर कि किसी अखबार की फाइल होगी, उसे ले लिया। इतने में अदालत लंच के लिए उठ गई। मैं उस पुलिन्दे को हाथ में लेकर यह सोचता हुआ बाहर निकला कि मामले के बिना मुकद्दमा कैसे लड़ा जाएगा? बाहर निकलकर भगतरामजी के साथ एक कमरे में जा बैठा। तब ख्याल आया कि मेरे हाथ में कुछ कागज हैं, उन्हें देखना चाहिए। देखा तो दंग रह गया। पं. गोपीनाथजी की बदचलनियों के सबूतों का ढेर मेरे सामने पड़ा था। बण्डल में वेश्याओं के नाम गोपीनाथजी के लिखे हुए पत्र थे। उन पत्रों में वे रहस्य भरे पड़े थे, जिनका किसी को वहम भी नहीं हो सकता था। जब उस बण्डल को मैंने भगतरामजी के सामने रखा तो वे उछल पड़े। उस बण्डल

को पिताजी के हाथ में कौन रख गया, यह कभी पता न लग सका?' यदि पिताजी आर्यसमाजी न होते तो उसे अवश्य ही 'साँवलशाह' का चमत्कार मान लेते। उस बण्डल ने न केवल पिताजी को निर्दोष साबित कर दिया, बल्कि पं. गोपीनाथजी का असली रूप भी संसार के सामने रख दिया।

पिताजी कहा करते थे कि उस बण्डल की घटना ने मेरे इस विश्वास को बहुत दृढ़ कर दिया कि साँच को आंच नहीं, क्योंकि सत्य के रक्षक परमात्मा का हाथ मनुष्य के हाथ से बहुत लम्बा है।

स्वभावगत लचीलापन

पिताजी का सारा जीवन इतना प्रगतिशील था कि उसमें अपरिवर्तनवादिता के लिए कोई गुंजाइश नहीं थी। फिर भी प्रारम्भिक वर्षों में गुरुकुल में इतना विचार संघर्ष हो गया, इसका मुख्य कारण यह प्रतीत होता है कि आरम्भ में पिताजी को जो सहायक मिले उनमें गुरुकुल चलाने की अन्य बहुत सी योग्यताएँ होते हुए भी उनके दृष्टि क्षेत्र बहुत संकुचित थे। आचार्य गंगादत्तजी एक तपस्वी विद्वान् थे, ब्रह्मचर्य में उनकी दृढ़निष्ठा थी। जब तक वे गुरुकुल में आचार्य रहे, अपनी सम्मति के अनुसार ब्रह्मचारियों के हितचिन्तन और चरित्र निर्माण का भरसक यत्न करते रहे। इन अर्थों में वे सच्चे आचार्य थे। इन सब गुणों के साथ उनमें एक विशेषता यह थी कि उनका दृष्टिकोण परिमित था। परिस्थितियों के साथ मेल करने के लिए आवश्यक परिवर्तन करना उनके स्वभाव के विरुद्ध था। इस कारण जब भी कोई नवीन वस्तु गुरुकुल में प्रवेश करने लगती थी, तब आचार्यजी उसे सन्देह की दृष्टि से देखते थे। पिताजी आचार्यजी का आदर करते थे और उनसे स्नेह भी करते थे। यथासम्भव वे किसी बात में भी उनकी सम्मति के विरुद्ध नहीं चलना चाहते थे, परन्तु जब कोई परिवर्तन आवश्यक हो जाता तो आचार्यजी की अनिच्छा को काफी रियायत देकर कुछ समय पश्चात् परिवर्तन हो जाने देते थे। कभी-कभी तो बहुत छोटी सी बात पर मतभेद हो जाता था और आन्दोलन का रूप धारण कर लेता था। इस प्रकार की एक घटना मुझे आज भी स्मरण है।

एक समय था जब ब्रह्मचारी फूँस के छप्परों में रहा करते तब रात के समय सरसों के तेल के चिराग से रोशनी की जाती थी। रात को पढ़ने का रिवाज नहीं पड़ा था, क्योंकि अधिकतर ग्रन्थ याद करने पड़ते थे। दिन में घोटा लगाया जाता था और रात को पुनरावृत्ति होती थी।

एक वर्ष के अन्दर-अन्दर कच्ची दीवारों के टिन शैड खड़े हो गये। एक टिन-शैड में २५-३० बालकों के रहने का स्थान था। यह आवश्यक प्रतीत हुआ कि कमरे में रोशनी करने के लिए बड़े लैम्प छत में टाँगे जायें। ऐसे लैम्प मिट्टी के तेल से जलते हैं। निरीक्षण की सुलभता के लिए यह आवश्यक समझकर कि प्रत्येक बैरक में एक-एक लैम्प लगा दिया जाये, पिताजी ने मुख्याधिष्ठाता की हैसियत से लैम्प का आर्डर भिजवा दिया

जब यह समाचार गुरुकुल में फैला तो एक विराट् आन्दोलन आरम्भ हो गया। इस आन्दोलन के मुखिया उस समय के आचार्य पं. गंगादत्तजी थे, जो उस समय पूरे अपरिवर्तनवादी थे।

उस आन्दोलन में कड़वे तेल के पक्ष में और मिट्टी के तेल के विरोध में बहुत सी युक्तियाँ दी जाती थीं। कहा जाता था कि कड़वे तेल का धुआँ आँखों में सुरमे का काम करता है और मिट्टी के तेल का धुआँ आँखों व फेफड़ों के लिए जहर का असर रखता है। हम लोगों की सहानुभूति प्रारम्भ में अपरिवर्तनवादियों के साथ थी। पं. गंगादत्तजी के मुख्य समर्थक भण्डारी सालिग्रामजी और अन्य कुछ संस्कृताध्यापक भी थे। उधर परिवर्तन-दल का मुखिया उन दिनों पं. भक्तरामजी डिंगा निवासी को समझा जाता था। आप भी गंगादत्तजी के शिष्यों में से थे, परन्तु कुछ अंग्रेजी पढ़े-लिखे थे। मिट्टी के तेल तथा अन्य ऐसे ही प्रस्ताव उठाने का श्रेय अपरिवर्तनवादी दल की ओर से पं. भक्तरामजी को ही दिया जाता था। जो चर्चाएँ हम लोगों के सामने होती थीं, उनमें मान लिया जाता था कि प्रधानजी (पिताजी) सर्वथा निर्दोष हैं, लोग उन्हें बहका देते हैं और वह सीधे होने के कारण उनकी बातों में आ जाते हैं। यह आन्दोलन कई महीनों तक जारी रहा। ब्रह्मचारियों में मिट्टी के तेल के प्रति विरोध की भावना बहुत उग्र रूप से पैदा की गई। यह तो अच्छा था कि अभी महात्मा गांधी ने भारत के सार्वजनिक जीवन में निष्क्रिय प्रतिरोध और कानून-

भंग की फसल नहीं बोई थी और ब्रह्मचारियों में प्रधानजी के प्रति बहुत श्रद्धा का भाव बना हुआ था। इसका परिणाम यह हुआ कि कभी जब प्रधानजी की आज्ञा से मिस्तरी मग्घरसिंह कमरों में बड़ी लालटेन लटकाने के लिए आया तो कोई अप्रिय घटना नहीं हुई और चुपके से मिट्टी के तेल के रूप में पाश्चात्य सभ्यता ने पूर्वी सभ्यता के दुर्ग में प्रवेश कर लिया।

पिताजी का एक सफल मनोवैज्ञानिक परीक्षण

एक दिन रात्रि के भोजन के पश्चात् हम दोनों भाइयों ने प्रधानजी (पिताजी) से प्रार्थना की कि हम अकेले में उनसे कुछ बातें करना चाहते हैं। गुरुकुलीय जीवन में शायद यह पहला अवसर था, जब हमने पिताजी से अलग बातचीत करने का अवसर माँगा हो, अन्यथा वे हम दोनों को सदा अन्य ब्रह्मचारियों के समान भाव से ही देखते रहे। हमारी प्रार्थना से पिताजी को आश्चर्य हुआ, तो भी उन्होंने हमारी प्रार्थना स्वीकार कर ली और हम दोनों को साथ लेकर उसी समय गुरुकुल वाटिका में चले गये। वहाँ टहलते-टहलते भाईजी ने पिताजी से अपने मन का भाव कहा- भाव यह था कि हम दोनों गुरुकुल की शिक्षा से सन्तुष्ट नहीं हैं। इस शिक्षा से हम पण्डित नहीं बन सकेंगे। पण्डित बनने के लिए काशी में शिक्षा पाना आवश्यक है। हमें पण्डित शिवकुमार शास्त्री, पण्डित जयदेव मिश्र और श्री भागवताचार्य जैसे पण्डितों से शिक्षा पाने का अवसर मिलेगा। आप हमें गुरुकुल से उठाकर बनारस भेज दीजिए।

कुछ देर तक चुपचाप टहलने के पश्चात् पिताजी ने बड़े शान्त भाव से कहा ''मैं तुम्हारी बातों का उत्तर कल दूँगा।'' दूसरे रोज हम बड़ी उत्सुकता से उत्तर की प्रतीक्षा करने लगे। तरह-तरह के विकल्प मन में उठ रहे थे। कभी सोचते कि पिताजी बनारस भेज देंगे, न भेजना होता तो उसी समय इन्कार कर देते। फिर विचार उठता कि भेजना होता तो उसी समय मान भी तो सकते थे। अवश्य इन्कार करेंगे। इसी तरह संकल्प-विकल्प करते सायंकाल का समय आ गया। सायंकाल पढ़ाई से छुट्टी होने पर कमरे से बाहर निकले तो प्रधानजी का चपरासी हाथ में एक कागज लेकर आता हुआ दिखाई दिया। उस कागज में इस आशय की आज्ञा लिखी हुई थी कि भोजन से निवृत्त होकर दो बड़ी श्रेणियों से सब ब्रह्मचारी मुख्याधिष्ठाताजी के निवास स्थान पर एकत्र हों। इस आज्ञा से हम दोनों भाइयों की द्विविधा और भी बढ़ गई। क्या हमारे प्रस्ताव का उत्तर सब के सामने दिया जाएगा?

भोजन के उपरान्त ऊपर की दो श्रेणियों के ब्रह्मचारी प्रधानजी के स्थान पर इकट्ठे हुए। प्रधानजी ने बड़े प्रसन्नभाव से ब्रह्मचारियों को यह समाचार सुनाया कि दोनों बड़ी श्रेणियों को देहरादून-यात्रा कराने का निश्चय किया गया है। इतना समाचार मात्र हम पिंजरे के पंछियों को फड़का देने के लिए पर्याप्त था। हमने अभी हरिद्वार भी अच्छी तरह न देखा था। देहरादून की यात्रा होगी, यह जानकर हम लोग बहुत ही प्रसन्न हुये। प्रधानजी ने अत्यन्त आकर्षक शब्दों में यात्रा कार्यक्रम हमारे सामने रखा। सायंकाल के समय चलेंगे। रात को मायापुर वाटिका में ठहरेंगे। सुबह स्टेशन पर पहुँचकर तुम लोगों को यह समझाऊँगा कि इंजन से रेल कैसे चलती है। देहरादून पहुँचकर जंगलात का कॉलेज, ओब्जरवेटरी आदि संस्थाएँ देखने को मिलेंगी, फिर सहस्त्रधारा चलेंगे, इत्यादि इतनी चीजें इकट्ठी देखने की आशा उत्पन्न करने के अनन्तर प्रधान जी ने हमारे जिम्मे कई काम लगा दिये। कल कागज मँगवा दिये जायेंगे, तुम लोग यात्रा के नोट लेने के लिए स्वयं जिल्द वाली डायरियाँ तैयार कर लो। सब मैले कपड़े धो डालो। चार दिन के लिए खैर की दातुनें इकट्ठी कर लो। यात्रा के लिए भण्डारी, सहायक भण्डारी उसी समय नियत कर दिये गये। इस प्रकार यात्रा और यात्रा की तैयारी का पूरा कार्यक्रम हमारे दिल और दिमाग में भरकर प्रधानजी ने हमें सोने के लिए आश्रम में भेज दिया।

मेरे अध्ययन और निजी अनुभवों में जितने मनोवैज्ञानिक परीक्षण आये हैं, उनमें शायद ही कोई परीक्षण सफल हुआ हो, जितना पिताजी का यह परीक्षण। मैं इसे उनकी नेतृत्व-शक्ति का सबसे बड़ा प्रबल प्रमाण मानता हूँ। मनुष्यों का नेता वही हो सकता है, जो उनमें मनों को अपनी इच्छानुसार साँचे में ढाल सके और ढाल भी सके ऐसे ढंग पर कि अनुयायियों को मालूम न हो कि उन्हें कुछ का कुछ बना दिया है। देहरादून की यात्रा के प्रस्ताव ने हम दोनों के मन में से बनारस जाने की इच्छा के

खण्डहरों तक को निकाल बाहर फेंक दिया। रात को जब हम सोने के लिए आश्रम में पहुँचे तो हमारे हृदयों में से निराशा विदा हो चुकी थी और उत्साह भरा हुआ था। हमारे कल रात के प्रस्ताव का पिताजी की ओर से यह क्रियात्मक उत्तर था।

देहरादून की यात्रा हम दोनों भाइयों के जीवन में एक पड़ाव की हैसियत रखती थी। उस यात्रा का ब्रह्मचारियों के मन और हृदय पर बहुत गहरा असर हुआ। बाहर की दुनियाँ से अलग रहने के कारण हमारे मन की स्लेट लगभग साफ थी। उस पर बाह्य संसार के जो पहले अक्षर लिखे गये, वे बहुत स्पष्ट और गहरे थे। हम लोग केवल संस्कृत ज्ञान के श्रद्धालु-रूप में यात्रा के लिए चले थे। जब वापिस आए तो विज्ञान, कला आदि की जिज्ञासा से पूर्ण थे। उस समय मनोवैज्ञानिक परीक्षण का परिणाम था, जो पिताजी ने ब्रह्मचारियों के मन पर किया था।

अपूर्व नेतृत्व क्षमता

पिताजी संन्यास ले चुके थे। गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता और आचार्य पद को अन्य कार्यकर्ताओं ने संभाल लिया था। गुरुकुल का उत्सव हो रहा था। उत्सव के निमित्त आकर पिताजी उसी प्रसिद्ध गंगा-तट वाले बंगले में ठहरे हुए थे। उत्सव का सबसे मुख्य अपील-सम्बन्धी व्याख्यान हो रहा था। इतने में दर्शकों के निवास स्थान की ओर से उठता हुआ धुआँ दिखाई दिया। क्षणभर में शोर मच गया 'आग लग गई, आग लग गई।' पण्डाल एकदम खाली हो गया। सब लोग कैम्प की ओर भागे। वहाँ जाकर देखा तो फूँस के छप्पर बारूद के ढेर की तरह धू-धू करके जल रहे थे। दर्शक लोग पागलों की तरह चारों ओर भागने और शोर मचाने लगे। बीसियों बच्चे कैम्प में सोये पड़े थे। इस भयानक आग में घुसकर कौन उन्हें बचाये? यह नहीं सूझता था कि फूँस में लगी आग बुझेगी कैसे? कुछ देर तक आर्तनाद और हाहाकार के सिवा कुछ सुनाई नहीं देता था। मेरी कानों सुनी बात है कि गुरुकुल के कई अधिकारी पण्डाल के पास खड़े होकर दृश्य को देख रहे थे और कह रहे थे कि अब क्या किया जा सकता है? हम तो पहले ही कहते थे कि फूँस के छप्पर नहीं बनाने चाहिए।

सहसा ऐसी निराशाजनक परिस्थिति को भेदता हुआ 'चलो, चलो, स्वामीजी आ गये' का शब्द भीड़ में सुनाई दिया और साथ ही बंगले की ओर से वे दृष्टिगोचर हुए। स्वामीजी सीधे मेहता गेट पर पहुँचे और शायद आधा मिनट तक सारी स्थिति का निरीक्षण किया और एकदम धाराप्रवाह की तरह आज्ञाएँ निकलने लगी-

'मिट्ठनलालजी, आप भागकर जाइये, गोशाला और वाटिका में जितने फावड़े और टोकरियाँ मिलें, सब लिवा लाइये।''

'चिरंजीलालजी, आप वस्तुभण्डार में से जितने घड़े या बाल्टियाँ मिलें, सब लिवा लाइये।'

'दोनों के साथ केवल २०-२० आदमी जावें, अधिक नहीं। शेष सब मेरे साथ आओ' कहकर स्वामीजी आग के पास जा पहुँचे और दर्शकों को स्वयं सेवक दलों के रूप में विभक्त कर दिया। एक दल को आज्ञा दी कि हाथों में या कपड़ों में भरकर जैसी भी हो मिट्टी और रेत लेकर आग पर डालो। दूसरे दल को आज्ञा दी जिन छप्परों में आग नहीं लगी, उनका सामान निकालकर बहुत दूरी पर रख दो और उन छप्परों को गिरा दो और यथाशक्ति घसीट कर आग से दूर ले जाओ। इतने में फावड़े, टोकरियाँ, बाल्टियाँ, घड़े सब चीजें आ पहुँचीं। एक दल मिट्टी खोदने लगा, दूसरा टोकरियों में भरकर आग पर डालने लगा, तीसरे दल ने कुएँ तक एक लम्बी लाइन लगा दी, जहाँ से घड़ों और बाल्टियों द्वारा पानी आने लगा। आर्तनाद बन्द हो गया। जहाँ अव्यवस्था थी, वहाँ व्यवस्था हो गई और लगभग आध घण्टे भर में आग सर्वथा शान्त हो गई। यह दृश्य मेरे हृदय पर बहुत गहरा अंकित है। पैदाइशी नेता ही ऐसे समय अव्यवस्था से व्यवस्था पैदा कर सकता है।

सर्वमेधयज्ञ में पूर्णाहुति

अभी हम दोनों भाई स्नातक नहीं बने थे, अगले वर्ष बननेवाले थे। एक दिन प्रातः काल लगभग ४ बजे हम दोनों को सोते से जगाकर कहा गया कि प्रधानजी ने आपको बुलाया है, बँगले पर चलिये। ऐसे असाधारण समय में बुलाये जाने का कारण हमारी समझ में नहीं आया। पूछने पर सेवक ने उत्तर दिया 'मुझे कुछ मालूम नहीं, हाँ इतनी बात अवश्य है कि आज रातभर वह सोये

नहीं। पहले टहलते रहे, फिर कुछ लिखते रहे।'

जब हम दोनों बँगले पर पहुँचे, तो पिताजी को कमरे में टहलते पाया। यह उनकी विचार की मुद्रा थी। गम्भीर विचार के समय वह पीछे की ओर दोनों हाथ मिलाकर टहला करते थे। हमारे पहुँचने पर वे कुर्सी पर बैठ गये और अत्यन्त गम्भीरता से दराज में से फुलस्केप आकार का एक लिखा हुआ कागज निकालकर हमारे सामने रखते हुए कहा- इसे पढ़ लो और यदि तुम सहमत हो तो इस पर हस्ताक्षर कर दो।' उस कागज में जो कुछ लिखा था, उसका अभिप्राय यह था 'मैंने अपनी शक्ति के अनुसार अपने जीवन में वैदिक धर्म की सेवा की है। ऋषि दयानन्द की आज्ञा को शिरोधार्य करके वैदिक धर्म के पुनरुद्धार और आर्यजाति के उत्थान के लिए गुरुकुल का संचालन करता रहा हूँ। मैंने गुरुकुल के लिए अपनी सब शक्ति लगा दी है, परन्तु अब मुझे अनुभव हो रहा है कि मेरा अब तक का प्रयत्न अधूरा था, मैंने अभी गुरुकुल के लिए सब कुछ नहीं दिया। जालन्धर में मेरा जो मकान है, वह पुश्तैनी नहीं है, मैंने अपनी कमाई से बनाया है, उसमें अभी तक मेरी ममता विद्यमान है। मैं उसे भी मिटा देना चाहता हूँ। इस कारण मैं इस दानपत्र द्वारा यह मकान गुरुकुल काँगड़ी के लिए आर्य-प्रतिनिधि सभा पंजाब को समर्पित करता हूँ।' जब हम उस दानपत्र को पढ़ चुके तो पिताजी ने कहा- 'यदि तुम्हें इसमें कोई आपत्ति न हो तो वैसा लिखकर दोनों भाई नीचे अपने हस्ताक्षर कर दो, ताकि सभावाले कोई झगड़ा नहीं मचायें।'

उस दानपत्र पर हम दोनों के हस्ताक्षरों का महत्त्व यह था कि इससे कुछ मास पूर्व पिताजी एक वसीयतनामा लिख चुके थे, जिसमें उन्होंने यह लिखा था कि कोठी को बेचकर जो दाम उठे, वे दोनों भाइयों को आधे-आधे बाँट दिये जायें। अनुमान यह था कि कोठी बीस हजार में बिकेगी। वसीयतनामे में हरिश्चन्द्रजी को १०,००० रुपये से प्रेस और पत्र चलाने का आदेश और मुझे विलायत जाकर बैरिस्टरी पास करने का आदेश दिया गया। इस नये दानपत्र से वह वसीयतनामा रद्द होता था।

हम दोनों ने उस अर्पणनामे को पढ़ लिया और चुपचाप उसके नीचे स्वीकृति सूचक हस्ताक्षर कर दिये। तब पिताजी ने हमसे कहा कि यह तो तुम्हें मालूम ही होगा कि यह कोठी मेरी अन्तिम भौतिक सम्पत्ति थी। शेष प्रेस आदि सब वस्तुएँ मैं पहले ही दे चुका हूँ। इस कोठी के देने के पश्चात् तुम्हारे लिए कोई वस्तु नहीं बचेगी। इस पर तुम आपत्ति करना चाहो, तो कर सकते हो। जहाँ तक मुझे याद है, शब्दों द्वारा हम दोनों भाई पिताजी के कथन का कुछ भी उत्तर नहीं दे सके। केवल इतना ही सूचित किया कि हमें सब मालूम है, हमें कोई आपत्ति नहीं और यह सूचना भी हमने शब्दों से नहीं, सिर के इशारे से ही दी थी। इसके पश्चात् हम दोनों आश्रम की ओर चले गये और पिता जी फिर बँगले में टहलने लगे।

हम दोनों यह समझ गये थे कि जब तक स्वयं पिताजी दान की घोषणा न करें तब तक दान का संकल्प गोपनीय है। उन दिनों गुरुकुल का उत्सव हो रहा था। उत्सव के निमित्त से हमारे बहुत से सम्बन्धी आये हुए थे। बड़ी बहन वहीं थीं और सम्भवतः तायीजी भी थीं। हमने दिनभर उनसे भी दानपत्र की कोई बात न की। दोपहर बाद गुरुकुल के लिए अपील के सम्बन्ध में पिताजी का भाषण था। उन दिनों अपील का समय उत्सव में सबसे महत्त्व रखता था। भीड़ और उत्साह की दृष्टि से वह अवसर अपूर्व समझा जाता था। उस वर्ष अपील से पूर्व शायद आगरे के ठाकुर नत्थासिंह ने मथुरा में एकबत्ती धीमी सी जल रही थी। वाला भजन ऐसी सुन्दरता से गाया था कि प्रत्येक पद पर करतल ध्वनि सुनाई दी थी। भजन के बाद पूर्ण सन्नाटे में अपील के लिए खड़े होकर पिताजी ने निम्नलिखित आशय का एक भाषण आरम्भ किया- (व्याख्यान का यह आशय मैं स्मृति के भरोसे पर और वह भी संक्षेप से लिख रहा हूँ)।

'कुछ समय हुआ, गुरुकुल के लिए धन-संग्रह करने के निमित्त मैं दिल्ली गया। वहाँ एक मण्डली को साथ लेकर मैं शहर के सबसे बड़े रईस के घर चन्दा माँगने पहुँचा। उस रईस को जब गुरुकुल की शिक्षा मण्डली के आने का समाचार मिला तो वह घर के अन्दर चला गया और कहला भेजा कि रायसाहब टट्टी गये हैं। हम बहुत देर तक वहाँ बैठे रहे, पर रायसाहब घर से बाहर न आये। यह बात मुझे बहुत बुरी मालूम हुई और मैं असन्तुष्ट होकर

मण्डली को लेकर वहाँ से चला आया। डेरे पर आकर मैंने अपनी अन्तरात्मा से पूछा कि ऐसा क्यों हुआ? मेरे अन्दर क्या कमी है, जिसके कारण वह धनी आदमी मुझ से बचने की चेष्टा कर रहा था और इसका भी क्या कारण है कि उसके बाहर न आने पर मैंने बुरा माना? मेरी आत्मा ने उत्तर दिया कि इसका कारण यह है कि तूने अभी अपने आपको सर्वतोभाव से धर्म की सेवा में अर्पण नहीं किया और तेरे मन में बची हुई सम्पत्ति के कारण अहंकार है। उसी समय मैंने निश्चय किया कि मैं अहंकार की जड़, इस थोड़ी सी सम्पत्ति को भी गुरुकुल को अर्पण कर दूँगा। और तब वस्तुतः धर्म की सेवा के योग्य हो सकूँगा।' इसके पश्चात् पिताजी ने अर्पणनामा पढ़कर सुना दिया।

जो बात मैंने इन थोड़ी सी पंक्तियों में लिखी है, वह वस्तुतः लगभग डेढ़ घण्टे के व्याख्यान में कही गई थी। जो नर-नारी उस दिन अपील में उपस्थित थे, उन्हें उस समय का दृश्य कभी नहीं भूल सकता। प्रारम्भ से ही श्रोता समझ गये थे कि आज की अपील में कोई असाधारण बात है। पिताजी में भावुकता का अंश बहुत अधिक था। उनके भाव चेहरे के चित्रपट पर तत्काल प्रतिबिम्बित हो जाते थे, हृदय की प्रत्येक भावना आँख, नाक और होंठों पर स्पष्टता से झलकने लगती थी और स्वर भी तदनुसार ही प्रभावित हो जाता था। जिस समय बादल के समान गरजते हुए स्वर से उन्होंने कहा कि मेरी अन्तरात्मा ने उत्तर दिया कि इसका कारण वह अहंकार है, जो थोड़ी सी बची हुई सम्पत्ति के कारण उत्पन्न होता है, तो प्रायः सब श्रोता समझ गये कि इसके प्रश्चात् कोई सनसनी पूर्ण घोषणा होनेवाली है, यज्ञकुण्ड में कोई बड़ी आहुति पड़ने वाली है। वक्ता के स्वर, अवसर और सम्भावित घोषणा का श्रोताओं पर कुछ ऐसा असर पड़ा कि उनकी आँखों में आँसू आ गये, जो वक्ता के प्रत्येक वाक्य के साथ बढ़ते गये, आँखों से बहने लगे। प्लेटफार्म पर अजीब दृश्य हो रहा था। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान लाला रामकृष्णजी, जो शायद संसार के कुछ एक चुने हुए उन व्यक्तियों में से होंगे, जिनके बारे में भावुक होने का सन्देह भी नहीं किया जा सकता था, वे रो रहे थे। 'प्रकाश' के सम्पादक महाशय कृष्णजी रूमाल से आँखें पोंछ रहे थे। भक्तराज लाला लभूराम नैयर आवाज से रो रहे थे। ये तीन नाम मैंने नमूने के तौर पर पेश कर दिये हैं। अपनी प्रकृति के अनुसार प्रायः सभी श्रोता द्रवित हो गये थे। जनता का यह हाल था कि उसे ताली बजाने या भाव व्यक्त करने तक का अवसर नहीं मिला, जब तक पिताजी दानपत्र पढ़कर बैठ न गये। व्याख्यान समाप्त होने पर जनता ने दिल खोलकर तालियों और जयकारों के साथ अपना हार्दिक भाव प्रकट किया।

पिताजी और मोतीलाल नेहरू का प्रथम मिलन

पिताजी के पास पण्डित मोतीलाल नेहरू का इस आशय का पत्र आया कि मैं मार्शल लॉ की घटनाओं की तहकीकाती कमेटी में भाग लेने के लिए लाहौर जा रहा हूँ। आप पंजाब में सेवा का कार्य करके अभी आये हैं। इलाहाबाद से लाहौर जाता हुआ दिल्ली में आपसे मिलकर जाऊँगा। पत्र में अपने दिल्ली पहुँचने की तारीख और पिताजी के निवास स्थान पर पहुँचने का निश्चित समय भी दिया हुआ था। निश्चित और विधिपूर्वक कार्य करने की यह प्रवृत्ति पूज्य नेहरूजी के चरित्र का एक अंग थी

मुझे नेहरूजी के समीप से दर्शनों की बड़ी लालसा थी। उन्हें एक बार पटना की कांग्रेस में दूर से देखा था। तब आप माडरेट (नरम) विचारों के धनी नेता समझे जाते थे। उस समय मैंने नेहरू परिवार को इलाहाबाद से रेल द्वारा पटना जाते हुए देखा था। पहले दर्जे का पूरा डिब्बा रिजर्व कराया गया था। पूरे विलायती वेश में दोनों नेहरू (पिता और पुत्र) जब प्लेटफार्म पर पहुँचे, तो स्टेशन पर काफी सनसनी सी फैल गई थी। नेहरूजी के धन और आनन्द भवन की ख्याति चारों और फैल चुकी थी। यह भी चर्चा पूरे जोर पर थी कि उनके लड़के विलायत से बैरिस्टर बनकर आये हैं, ये भी हाईकोर्ट में प्रैक्टिस करेंगे। दोनों नेहरूओं के साथ अन्य भी दो-तीन व्यक्ति थे, जो रूप-रंग और वेशभूषा से नेहरू-परिवार के ही सदस्य माने जा रहे थे। वह नेहरू परिवार का ठाठ था, जिसे साधारण जनता उत्सुकता से देख रही थी।

उसके पश्चात् यह पहला अवसर था, जब मुझे नेहरूजी के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त करने की आशा हुई। मैंने पिताजी से निवेदन किया कि मैं नेहरूजी के आपके स्थान

पर आने के समय कुछ देर उपस्थित रहना चाहता हूँ और आपकी बातचीत आरम्भ हो जाने पर चला जाऊँगा। पिताजी ने स्वीकार कर लिया।

यह दृश्य मुझे पूरी तरह याद है। प्रातः काल के दस बजे का समय होगा, जब पण्डितजी पिताजी के निवास स्थान पर पहुँचे। जब वे सीढ़ियों से ऊपर पहुँचे तो उनके रूप की पहली झाँकी दिखाई दी। अभी वे कोट-पैण्ट और हैट के वेश से निकले नहीं थे। शानदार सफेद मूँछें उनके सुन्दर कश्मीरी चेहरे पर खूब सज रही थीं और उनकी शान को बढ़ा रही थीं। पिताजी उनका स्वागत करने के लिए कमरे से बाहर आये। उस समय जो परिस्थिति उत्पन्न हुई, वह वस्तुतः बहुत मनोरंजक थी। इसमें थोड़ा अभिनय का सा रंग भी आ गया था। पिताजी ने बाहर आकर पण्डितजी पर नजर पड़ते ही आश्चर्य से कहा- 'हैं, तुम हो।' पण्डितजी ने भी पिताजी की तरफ ध्यान देकर कहा- 'अरे, तुम हो।' मैं आश्चर्य में आ गया। दोनों ने खूब कसकर हाथ मिलाये। पिताजी ने कहा 'मैं अब तक नहीं जानता था कि पण्डित मोतीलाल नेहरू तुम ही हो।' पण्डितजी ने उत्तर दिया- 'मैं भी अब तक नहीं समझता था कि महात्मा मुंशीराम और स्वामी श्रद्धानन्द तुम ही हो।' इसके पीछे थोड़ी देर के लिए दोनों बुजुर्ग अपनी आयु, ऊँची परिस्थिति और शायद मेरी उपस्थिति को भूल गये और पुराने कॉलेज के समय में वापिस चले गये। एक ने दूसरे से कहा- 'तुम तब भी बहुत नटखट थे।' दूसरे ने उत्तर दिया 'तुम्हारी तब भी यही आदत थी।' किसने किससे क्या कहा, यह याद नहीं आ रहा, सारी बातचीत से थोड़ी देर में मेरी समझ में आ गया कि कॉलेज में पढ़ने के समय दोनों बुजुर्ग इलाहाबाद में सहपाठी थे, दोनों सैलानी तबीयत के थे और किताबों के कीड़े नहीं थे।

इतना परिचय प्राप्त करके और दर्शनों से सन्तुष्ट होकर मैं चुपके से वहाँ से उठ गया। दोनों में लगभग दो-तीन घण्टे तक बातचीत होती रही।

परोपकारिणी सभा अजमेर द्वारा प्रकाशित पुस्तकों पर विशेष छूट

पुस्तक का नाम	पृ. सं.	वास्तविक मूल्य रुपये	छूट के साथ मूल्य रुपये
अष्टाध्यायी भाष्य (तीनों भाग)	१११३	५००	३५०
महर्षि दयानन्द सरस्वती का पत्र-व्यवहार (दोनों भाग)	१३९२	८००	५००
कुल्लियाते आर्यमुसाफ़िर (दोनों भाग)	९३८	९५०	६००
डॉ. धर्मवीर का सम्पादकीय संकलन (तीन भाग)	८१४	५००	२५०
पण्डित आत्माराम अमृतसरी	१७४	१००	७०
महर्षि दयानन्द के शास्त्रार्थ	२१६	१५०	१००
वेद पथ के पथिक	२६४	२००	१००
महर्षि दयानन्द के हस्तलिखित-पत्र	३३६	२००	१००
स्तुतामया वरदा वेदमाता	१३५	१००	७०
वैदिक चिन्तन की नयी दिशा	२४८	१३०	८०

यजुर्वेद भाष्य (महर्षि दयानन्द सरस्वती) पृष्ठ संख्या- २१९७, चार भागों का मूल्य = १३००/-

डाक-व्यय सहित विशेष छूट पर उपलब्ध मूल्य = १०००/-

पुस्तकों हेतु सम्पर्क करें:- दूरभाष - 0145-2460120, चलभाष - 9460039455

वैदिक पुस्तकालय, अजमेर से क्रय की जाने वाली पुस्तकों की राशि ऑनलाइन जमा कराने हेतु

खाताधारक का नाम - **वैदिक पुस्तकालय, अजमेर।**

बैंक का नाम - **पंजाब नेशनल बैंक, कचहरी रोड, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या - **0008000100067176**

IFSC - PUNB0000800

महान् शिक्षाविज्ञ

आचार्य विधुशेखर भट्टाचार्य

सन् १९०५-१९०६ के आसपास की बात है, मुझे गुरुकुल ब्रह्मचर्याश्रम हरिद्वार की यात्रा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। गुरुकुल के वार्षिकोत्सव पर होनेवाले एक सरस्वती सम्मेलन के सभापति पद के लिए मुझे वहाँ निमन्त्रित किया गया था। मुझे अच्छी तरह से याद है कि मैंने वहाँ जो कुछ देखा था उसका मुझ पर और मेरे दो साथियों के हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ा था। खूब तड़के हमारी गाड़ी हरिद्वार स्टेशन पर पहुँची और उसी समय हम लोग गुरुकुल के लिए रवाना हो गए। गुरुकुल में हम लोग ९ बजे पहुँचे। उस समय वहाँ जल्से की कार्यवाही हो रही थी। अपने एक दोस्त के साथ मैं ज्यों ही पण्डाल में पहुँचा, उसी समय मुझे महात्मा मुंशीराम के दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। यही महात्मा मुंशीराम बाद में स्वामी श्रद्धानन्द के नाम से भारतवर्ष भर में विख्यात हुए। मुझे देखकर वह उठ खड़े हुए और बड़े प्रेम के साथ उन्होंने मेरा स्वागत किया। मैंने बड़े सम्मान के साथ उन्हें प्रणाम किया। मैंने देखा कि उनकी पोशाक बड़ी सादी है। सिर्फ एक देसी धोती, एक कुरता, एक पीला दुपट्टा। यह पीला दुपट्टा गुरुकुल की पोशाक का, विशेषकर ब्रह्मचारियों की पोशाक का मुख्य अंग था। महात्मा मुंशीराम के चारों ओर उनके प्रिय ब्रह्मचारी अपनी पीली पोशाक में बैठे थे। पण्डाल को बड़े अच्छे ढंग से सजाया गया था। ब्रह्मचारियों के हाथों से बने संस्कृत भाषा के सुन्दर-सुन्दर मोटोज से पण्डाल शोभित हो रहा था। ब्रह्मचारियों का वह सुलेख मुझे एक उत्कृष्ट कला के समान जान पड़ा। मुझे बताया गया कि इस सुन्दर 'सुलेख' के प्रणेता गुरुकुल के ही एक अध्यापक हैं। उनका नाम पं. गौरीशंकर भट्ट था। इस तरह के कुछ सुन्दर लेख ब्रह्मचारियों ने मुझे भी भेंट करने की कृपा की। सभा के बाद गुरुकुलीय सज्जनों से प्रणाम कहकर मैंने विदा ली। गुरुकुल से लौटकर वे लेख मैंने शान्ति निकेतन में दिखाये। शान्ति निकेतन के विद्यार्थियों ने उन सुलेखों की बड़ी प्रशंसा की। मुझे मालूम नहीं कि गुरुकुल में सुलेख की वह उन्नत कला आज भी उसी रूप में विद्यमान है या नहीं? पण्डाल के मोटोज पर उन्हें बनानेवाले ब्रह्मचारियों का नाम भी लिखा हुआ था, जिससे उनकी सुन्दरता और भी बढ़ गई थी।

महात्मा मुंशीरामजी को उनके मुख्याधिष्ठातृत्व में देख सकना मेरे लिए सचमुच एक बड़े सौभाग्य की बात थी। वास्तव में वह एक बड़े निर्माणकर्त्ता थे और उन्होंने अपनी निर्माण शक्ति को अपनी रचना गुरुकुल में प्रकट किया था। प्रायः प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में कुछ न कुछ निर्माण करता ही है, परन्तु निर्माण का कार्य दो प्रकार का होता है- एक तो दैवीय, दूसरा आसुरिक। मुझे यह कहने की आवश्यकता नहीं कि महात्मा मुंशीरामजी का निर्माण कार्य दैवीय ढंग का था। यह दैवीय निर्माण कार्य न केवल उन्हीं के मोक्ष का साधन था, अपितु उनके देश बल्कि सम्पूर्ण मानव जाति को मुक्ति मार्ग पर ले जानेवाला था। उन्होंने प्राचीन शिक्षा प्रणाली का पुनरुद्धार किया, इस प्राचीन प्रणाली में उन्होंने नवीन परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन भी किये। इस प्रणाली का मुख्य उद्देश्य ब्रह्मचर्याश्रम का पालन करना था। आजकल की प्रचलित शिक्षा पद्धति से साधारण स्कूलों, कॉलेजों और विश्वविद्यालयों से जो विद्यार्थी निकलते हैं, ये एक तरह से केवल बोलनेवाली मशीनें ही होते हैं, वास्तविक जीवन का उनमें प्रायः अभाव होता है। अतः जो कुछ वे पढ़ते हैं, उसे ये व्यवहार में नहीं ला सकते। वे जो शिक्षा पाते हैं उसमें और उनके व्यावहारिक जीवन में कोई समता प्रायः प्रतीत नहीं होती। इसका मुख्य कारण यही है कि आज के विद्यार्थियों को ब्रह्मचर्य की कीमत नहीं समझाई जाती। पढ़े-लिखे लोगों से समाज चल सकता है, परन्तु दुश्चरित्र लोगों से समाज कायम नहीं रह सकता। वह शक्ति ब्रह्मचर्य ही है, जिससे मनुष्य का शरीर, मन और मस्तिष्क मजबूत बनता है और इसके द्वारा वह अपने कर्त्तव्य पालन के योग्य बन सकता है। महात्मा गाँधी को देखिए और आप इस तथ्य को माने बिना न रहेंगे। महात्मा मुंशीराम ने आजकल की शिक्षा-पद्धति में ब्रह्मचर्य को आधारभूत

स्थान दिया। शिक्षा-पद्धति में बड़ी-बड़ी किताबें रख देने से ही उन्हें सन्तोष नहीं हुआ। उनकी अभिलाषा थी कि उनके विद्यार्थी शारीरिक तथा मानसिक दृष्टि से इतने मजबूत बन जायें कि वे जो कुछ पढ़ें, उसे भरसक अपने जीवन में ला सकें। इसी उद्देश्य से वे गुरुकुल में ऐसा जीवन बिताते थे, जो उनके विद्यार्थियों के लिए एक वे ऊँचा आदर्श कायम कर सकता था। वर्तमान शिक्षकों और प्राचीन आचार्यों में वास्तविक भेद इसी बात का है। प्राचीन काल के माँ-बाप अपने बच्चों को किसी स्कूल मास्टर या प्रोफेसर के पास नहीं भेजते थे, वे उन्हें 'आचार्य' के पास भेजते थे। 'आचार्य' उसी को कहते थे, जो अपने शिष्यों को आचार की शिक्षा दे और स्वयं उस शिक्षा का आदर्श रूप बनकर उनके बीच में रह सके। महात्मा मुंशीराम सचमुच इसी किस्म के एक महान् आचार्य थे। वे हमारे देश के एक महान् शिक्षाविज्ञ थे।

उनसे मिलने का मुझे एक और सुअवसर भी प्राप्त हुआ, परन्तु इस बार गुरुकुल में नहीं शान्ति निकेतन में, इस समय वह संन्यासाश्रम धारण करके स्वामी श्रद्धानन्द बन गए थे। वह बंगाल से आये थे, अच्छा अवसर देखकर हम लोगों ने उन्हें शान्ति निकेतन में निमन्त्रित किया। उन्होंने वह निमन्त्रण सहर्ष स्वीकार कर लिया और यहाँ आने की कृपा की। शान्ति निकेतन के सम्पूर्ण विद्यार्थियों और प्रोफेसरों ने गुरुकुल काँगड़ी के इस महान् संस्थापक का बड़े उत्साह के साथ स्वागत किया। वह यहाँ कुछ दिनों तक ठहरे। हमारे प्राचीन कलाभवन में, जहाँ आजकल शान्ति निकेतन का कॉलेज आश्रम है, उनके स्वागत में एक सभा की गई और श्री स्वामीजी से प्रार्थना की गई कि वह भारतवर्ष की शिक्षा-प्रणाली पर व्याख्यान दें। उन्होंने इस व्याख्यान में बताया कि किन बातों ने उन्हें गुरुकुल खोलने के लिए प्रेरित किया, उनके मार्ग में कौन-कौन सी कठिनाइयाँ आई और उन्हें उन्होंने किस तरह दूर किया? उन्होंने यह भी बताया कि इस दिशा में उनका उद्देश्य क्या है और गुरुकुल को वह क्या रूप देना चाहते हैं? उनके इस व्याख्यान का हम लोगों पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा।

स्वामी श्रद्धानन्द एक ऐसे पुरुष थे, जिन्हें 'यथावादी तथाकारी' कहा जा सकता है। अपनी मातृभूमि से सब तरह की बुराइयों का नाश करने में वह एक निर्भय योद्धा थे। वास्तव में उन्होंने अपना सभी कुछ होम कर अन्त में मातृभूमि की सेवा के लिए अपना जीवन भी समर्पित कर दिया। अपने उद्देश्य को पूरा करने के लिए उन्होंने अपने जीवन का भी मोह नहीं किया।

लेखकों से निवेदन

- लेखक कृपया अपने मौलिक व अप्रकाशित लेख ही भेजें
- लेखक अपना पूरा पता व चल-दूरभाष संख्या लेख के साथ अवश्य लिखें।
- परोपकारिणी सभा द्वारा रचनाओं के लिए किसी प्रकार का भुगतान नहीं किया जाता है।
- अपनी रचना की एक प्रति कृपया अपने पास रखकर भेजें, क्योंकि अस्वीकृत रचनायें डाक द्वारा लौटायी नहीं जाती हैं।
- रचना के प्रकाशन में छः माह या अधिक समय भी लग सकता है, अतः कृपया तब तक रचना को अन्यत्र न भेजें।
- स्वीकृत रचना परोपकारी के किसी आगामी अङ्क में देखी जा सकती है। **-सम्पादक**

आर्यवीर दल व्यायाम प्रशिक्षण एवं संस्कार शिविर का आयोजन

परोपकारिणी सभा द्वारा आयोजित आर्यवीर दल राजस्थान का जिला स्तरीय जूडो-कराटे, आसन-प्राणायाम, व्यायाम प्रशिक्षण एवं संस्कार शिविर का आयोजन दिनांक २४ से ३१ दिसम्बर २०२१ तक ऋषि उद्यान, पुष्कर मार्ग, अजमेर में आयोजित किया जा रहा है। शिविर के अन्तर्गत ११ कुण्डीय यज्ञ, विशेष प्रवचन, ईश्वर भक्ति, देश भक्ति, संगीत, नशा मुक्ति, युवा जागृति आदि का आयोजन तथा भाषण, वाद-विवाद, चित्रकला, संध्या आदि विभिन्न प्रतियोगिता का भी आयोजन किया जायेगा। **सम्पर्क - 9460016590, 7597727106**

अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द

श्री महाशय कृष्ण

मैंने स्वामी जी के पहली बार दर्शन उस समय किये जब कि मैं कॉलेज का विद्यार्थी था। वे अभी तक लाला मुंशीराम थे और जालन्धर के एक प्रसिद्ध वकील थे। मेरे देखते-देखते उन्होंने घर-बार को त्याग दिया और गुरुकुल के लिए भिक्षा करने को निकले। मेरी आँखों के सामने वह लाला से महात्मा मुंशीराम बने और महात्मा मुंशीराम से स्वामी श्रद्धानन्द। इस प्रकार मेरा उनका सम्पर्क २५ वर्ष रहा। मार्च १९०२ में उन्होंने गुरुकुल की स्थापना की। नवम्बर १९०२ में जब आर्यसमाज लाहौर का उत्सव हुआ तो वह भी उसमें सम्मिलित हुये। उस समय उनकी सर्वप्रियता अपने चरम पर थी। आर्यसमाज के उत्सव पर नगर कीर्तन रेलवे स्टेशन से चला करता था। पहले उत्सवों के नगर कीर्तन में वह सम्मिलित हुआ ही करते थे, किन्तु इस वर्ष नगर कीर्तन में उनकी शान निराली ही थी। उनके पाँव में खड़ाऊँ थी, उनके वस्त्र पीताम्बर थे, उनके सिर पर जो पगड़ी थी, उसमें ऋषि दयानन्द की भांति उन्होंने दो लट छोड़ रखे थे। कद और बुत्त के लिहाज से वह शानदार थे ही, इस वेश में उनकी शान और भी बढ़ गई। नगर कीर्तन में उन पर स्थान-स्थान पर पुष्प वर्षा होती रही। वह दृश्य भी मेरे सामने है जब उन्होंने संन्यास ग्रहण किया। कह नहीं सकता कि मेरे मन को क्या हुआ मेरा हृदय थमने को न आता था। मुझे कुछ ऐसा अनुभव होता था कि मेरा निहायत ही प्रिय सम्बन्धी मुझसे जुदा होने को है। स्वामी सत्यानन्दजी ने मुझे इस स्थिति में देखा तो उन्होंने महात्मा मुंशीराम से कहा कि कृष्ण निढाल हो रहा है, उसे ढाढ़स दो। इस प्रकार महात्माजी ने मुझे अपने पास बुलाकर ढाढ़स दी, जिस प्रकार बड़े छोटों को देते हैं, किन्तु मेरी ढाढ़स नहीं बँधी। मुझे उस समय कुछ ऐसा अनुभव हुआ कि संन्यास लेने के पश्चात् महात्मा मुंशीराम का सम्बन्ध मुझसे टूट जायेगा। उनकी मौत के समय में उपस्थित न था, किन्तु समाचार मिलते ही मैं लाहौर से चल पड़ा। सायंकाल ७ या साढ़े सात बजे का समय था जबकि एक सज्जन आये और उन्होंने मुझे बताया कि अब्दुल रशीद मुसलमान ने स्वामी श्रद्धानन्द को गोली मार दी है। यह सुनते ही मैं बेचैन हो उठा। उन दिनों भी बम्बई मेल रात ९ बजे चला करती थी। पं. विश्वम्भरनाथ, कुलभूषण और मैं दूसरे दिन प्रातः पहुँच गये और सात दिन वहाँ रहे। स्वामीजी का मृतक शरीर दो दिन तक रखा गया, ताकि दिल्ली से बाहर के आर्यपुरुष पहुँच जायें।

अर्थी उठी और पूरी शान से उठी। हज़ारों लोग शहीद की अर्थी के साथ थे। स्वामी श्रद्धानन्द की जय, वैदिक धर्म की जय के नारे लगा रहे थे। जिस अर्थी पर स्वामीजी का शरीर रखा गया था वह भी बड़ी ऊँची थी। इस पर मैंने कहा था- **'आशिक का जनाज़ा है जरा धूम से उठे। आशिक का जनाज़ा है जरा शान से उठे।'** दिल्ली के बाजारों से होते हुए अर्थी अपने अन्तिम स्थान पर पहुँची। वेदमन्त्रों की ध्वनि के साथ चिता में अग्नि प्रज्वलित की गई और जिस समय शोले बुलन्द हुए मेरे मानसिक नेत्रों से कुछ ऐसा दिखाई दिया कि शहीद श्रद्धानन्द सामाजिक जीवन से ऊपर उठ रहा है और जिस प्रकार वह भाषण देते हुए अपनी अंगुलि उठाया करते थे, उसी प्रकार वह अंगुलि उठाते हुए लोगों से कह रहे थे-

चढ़ा मन्सूर सूली पर पुकारा इश्क बाजों को।
यह जीना बांम का उसका आए जिसका जी चाहे।।

मेरा स्वामीजी से २५ वर्ष सम्बन्ध रहा। इस अन्तर में मैंने उनके जीवन को हर प्रकार से देखा। उनके गुण भी और दोष भी मेरे सामने आये। दोष कोई बड़े न होकर केवल स्वभाव के दोष थे। उन्हें उनके स्वभाव का गुण समझो या दोष। उनके स्वभाव में यह बात थी कि जो उनके सम्पर्क में आता था और उन्हें जो बात कह देता था तो उसकी बात पर वह विश्वास कर लेते थे। अपने समाचार पत्र 'सद्धर्म प्रचारक' में उसका वर्णन कर दिया करते थे और जब उसका खण्डन हो जाता था तो उन्हें अपनी भूल स्वीकार करने में कोई संकोच नहीं होता था। महात्मा मुंशीराम आर्यपुरुषों के हृदय सम्राट् थे। उनके एक-एक शब्द गुरु वाक् का दर्जा रखते थे। इसलिए जिसकी प्रशंसा

कर देते वह उठ जाता था और जिसकी निन्दा कर देते वह आर्यजगत् की नज़रों में गिर जाता था

आर्यसमाज में दलबन्दी हो रही थी। एक दल महात्मा मुंशीरामजी का था, दूसरा लाला रलाराम और वैद्य ठाकुरदत्तजी का था। स्वर्गीय मा. लक्ष्मणजी लाला रलारामजी के दल में समझे जाते थे। वे आर्यसमाज गुजरात के वार्षिक उत्सव में सम्मिलित हुये। जब वे भोजन के समय पंक्ति में जाकर बैठे तो दूसरे आर्यपुरुषों ने उनका बहिष्कार किया और सब आर्यपुरुष उठ गये। मा. लक्ष्मण जी पर इसका बड़ा असर हुआ। उन्होंने सोचा कि मुझे तो आर्यसमाज की सेवा करनी है। यदि मैं एक दल में होते हुए आर्यसमाज की सेवा नहीं कर सकता तो मैं दल में क्यों रहूँ? उसी समय उन्होंने घोषणा की कि मैं आज से उस (लाला रलाराम के) दल से पृथक् होता हूँ।

उन दिनों हम युवकों की महात्मा मुंशीराम पर कितनी अगाध श्रद्धा थी और हम उनका कितना सम्मान करते थे, इसका अनुमान इस एक ही घटना से सहज में लगाया जा सकता है। उन दिनों आर्यसमाज लाहौर के वार्षिकोत्सव में एक आर्य-सम्मेलन हुआ करता था, जिसमें आर्यसमाज से विशेष सम्बन्ध रखनेवाले विषय पेश हुआ करते थे। यह सम्मेलन रात के दस बजे शुरू होता था और कई बार चार बजे तक रहता था। उस वर्ष सम्मेलन में विचार का विषय था-'वर्ण व्यवस्था।' महात्मा मुंशीरामजी ने यह प्रस्ताव भाषण के साथ पेश किया। यह समाचार प्रकट हो चुका था कि महात्मा मुंशीरामजी अपनी कन्या का विवाह डॉ. सुखदेव के साथ करना चाहते हैं। आर्यसमाज में भी इस सम्बन्ध का विरोध हो रहा था। इस सम्मेलन में पं. रामभजदत्त इसका विरोध करने को खड़े हुये। उन्होंने अपने भाषण में कहा- 'मैं जानता हूँ, महात्मा मुंशीराम से टक्कर लेना चट्टान से टक्कर लेना है। किन्तु मैं अपनी आत्मा की आवाज़ दबा नहीं सकता कि महात्माजी अपनी ख्याति के लिए अपनी लड़की का बलिदान कर रहे हैं।' जब बहस समाप्त होने पर महात्माजी उत्तर देने के लिए खड़े हुए तो पं. रामभजदत्त जी के उन शब्दों का उल्लेख करते हुए उनका हृदय भर आया। यह होना था कि हम बिलख-बिलख कर रोने लगे और सम्मेलन एक शोकगृह बन गया।

'सत्यार्थ प्रकाश' एवं 'महर्षि दयानन्द जीवन-चरित्र' प्रचार महायज्ञ में आपकी आहुति

महर्षि दयानन्द सरस्वती कृत अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' ने अविवेक, पाखण्ड, अन्धविश्वासों का दमन कर समाज में एक नई क्रान्ति 'वैचारिक क्रान्ति' को जन्म दिया। अतः परोपकारिणी सभा ने ७ वर्ष पूर्व 'विश्व पुस्तक मेला' दिल्ली में प्रतिवर्ष '**सत्यार्थप्रकाश**' के साथ '**महर्षि का जीवन-चरित्र**' एवं '**आर्याभिविनय**' पुस्तक का निःशुल्क वितरण करने की योजना बनाई, जो निरन्तर चल रही है।

एक सैट की छपाई का खर्च लगभग १५० रु. आता है। **यदि कोई व्यक्ति अपनी सात्त्विक भावना से केवल २० पुस्तकें (इससे अधिक कितनी भी) ही वितरित करवाना चाहता है, तो सभा उतनी प्रतियों पर दानी व्यक्ति का नाम छपवाकर वितरित करेगी। इसी प्रकार ३०, ५०, १००, १००० आदि।**

१५० रु. प्रति के अनुसार आप दान देकर अपनी ओर से, अपने नाम से पुस्तक वितरित करा सकते हैं।

अपने दान के साथ 'सत्यार्थप्रकाश वितरण' अवश्य लिख देवें, और साथ ही अपना नाम एवं पता भी। यह दान आप परोपकारिणी सभा के खाते में ऑनलाइन, चैक द्वारा या फिर परोपकारिणी सभा के पते पर मनिऑर्डर भी कर सकते हैं।

न्यूनतम	२० प्रतियाँ	३०००/- रु.
	३० प्रतियाँ	४५००/- रु.
	५० प्रतियाँ	७५००/- रु.
	१०० प्रतियाँ	१५०००/- रु.
	५०० प्रतियाँ	७५०००/- रु.
	१००० प्रतियाँ	१,५०,०००/- रु.

इस प्रकार जितनी अधिक प्रतियाँ बाँटना चाहें, उतनी राशि दूरभाष संख्या के साथ भेज देवें। धन्यवाद।

मन्त्री, परोपकारिणी सभा, अजमेर

मेरे धर्मबन्धु स्वामी श्रद्धानन्द

महात्मा गांधी

जिसकी आशंका थी वही हुआ। कोई छः महीने हुये स्वामी श्रद्धानन्दजी सत्याग्रहाश्रम में आकर दो-एक दिन ठहरे थे। बातचीत में उन्होंने मुझसे कहा था कि उनके पास जब तब ऐसे पत्र आया करते थे, जिनमें उन्हें मार डालने की धमकी दी जाती है। ऐसा कौन-सा सुधारक है, लोग जिसकी जान के ग्राहक नहीं हुये? इसलिए उनके लिए ऐसे पत्र में अचम्भे की कोई बात नहीं थी और उनका मारा जाना कोई अनहोनी नहीं है।

स्वामीजी सुधारक थे। वे कर्मवीर थे, वचनवीर थे। जिस बात में उनका विश्वास था, वे उसका पालन करते थे। उन विश्वासों के लिए उन्हें कष्ट झेलने पड़े। वे वीरता के अवतार थे। खतरे के सामने वे कभी काँपे नहीं। वे योद्धा थे और योद्धा रोग-शय्या पर नहीं मरना चाहता। वह तो युद्धभूमि में मरना चाहता है।

कोई एक महीना हुआ, स्वामी श्रद्धानन्दजी बहुत बीमार पड़े। डॉक्टर अन्सारी उनकी चिकित्सा करते थे। जितने प्रेम से सम्भव था, डॉ. अन्सारी उनकी सेवा करते थे। इस महीने के आरम्भ में मेरे पूछने पर उनके पुत्र इन्द्र ने तार दिया था कि स्वामीजी अब अच्छे हैं और प्रेम तथा शुभकामना के आकांक्षी हैं। मैं तो उनके बिना माँगे ही उन्हें अपना प्रेम देता रहता था और भगवान् से उनके लिए प्रार्थना करता रहता था।

भगवान् को उन्हें शहीद की मौत देनी थी। इसलिए रोग शय्या पर रहते हुये ही वे उस हत्यारे के हाथ मारे गये जो इस्लाम पर धार्मिक चर्चा के नाम पर उनसे मिलना चाहता था। उसे स्वामीजी की आज्ञा से अन्दर आने दिया गया। उसने प्यास मिटाने को पानी माँगने के बहाने स्वामीजी के ईमानदार नौकर धर्मसिंह को पानी लेने बाहर भेज दिया और फिर नौकर के चले जाने पर बिस्तर पर पड़े हुए रोगी की छाती में दो प्राणघातक चोटें कीं। स्वामीजी के अन्तिम शब्दों की हमें ख़बर नहीं। फिर भी अगर मैं थोड़ा उन्हें भी पहचानता था तो मुझे इसमें बिल्कुल सन्देह नहीं है कि उन्होंने अपने परमात्मा से उस हत्यारे के लिए, जो यह नहीं जानता कि वह कोई पाप कर रहा है, क्षमायाचना की होगी। इसलिए 'गीता' की भाषा में 'वह योद्धा धन्य है, जिसे ऐसी मृत्यु प्राप्त होती है।'

मृत्यु तो हमेशा ही धन्य होती है, मगर उस योद्धा के लिए तो और भी अधिक, जो अपने धर्म यानी सत्य के लिए मरता है। मृत्यु कोई शैतान नहीं है। वह तो सबसे बड़ी मित्र है। वह हमें कष्टों से मुक्ति देती है। हमारी इच्छा के विरुद्ध भी हमें छुटकारा देती है। वह हमें बराबर ही नई आशाएँ, नये अवसर प्रदान करती है। वह नींद के समान मीठी है, जो हमें फिर ताजा कर देती है। किन्तु तो भी किसी मित्र के मरने पर शोक करने का रिवाज है। लेकिन जब कोई शहीद मरता है तो वह रिवाज बेमानी हो जाता है। अतएव इस मृत्यु पर मैं शोक नहीं कर सकता। **स्वामीजी और उनके परिवार के लोग ईर्ष्या के पात्र हैं, क्योंकि श्रद्धानन्दजी मर जाने पर भी जी रहे हैं।** यह हमारे बीच अपना विशाल शरीर लेकर घूमा करते थे, आज उससे भी अधिक सच्चे अर्थ में यह जी रहे हैं। जिस कुल में उनका जन्म हुआ था, जिस जाति के वह थे, वे सभी उनकी ऐसी महिमामय मृत्यु लिए बधाई के पात्र हैं। वह वीर पुरुष थे। उन्होंने वीरगति पाई।

स्वामीजी से मेरा पहला परिचय तब हुआ जब वे महात्मा मुंशीराम के नाम से प्रसिद्ध थे। वह परिचय भी पत्रों के जरिये हुआ था। उस समय काँगड़ी गुरुकुल के प्रधान थे। गुरुकुल शिक्षा के क्षेत्र में उनका महान् योगदान है। वे पश्चिम की रूढ़िवादी शिक्षा पद्धति से सन्तुष्ट न थे। अपने छात्रों में वैदिक शिक्षा का प्रचार करना चाहते थे और वे हिन्दी माध्यम से पढ़ाते थे, अंग्रेजी माध्यम से नहीं। वे चाहते थे कि अपने शिक्षाकाल में विद्यार्थी ब्रह्मचर्य का पालन करें। दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रहियों के लिए उस समय जो धन इकट्ठा किया जा रहा था, उसमें चन्दा देने के लिए उन्होंने लड़कों को उत्साहित किया था। वे चाहते थे कि लड़के खुद कुली बनकर, मजदूरी करके चन्दा दें, क्योंकि दक्षिण अफ्रीका का वह युद्ध खुद कुलियों का युद्ध ही था। लड़कों ने यह सब पूरा कर दिखाया और स्वयं कमाई हुई पूरी मजदूरी मेरे पास भेजी। इस विषय में मुझे जो पत्र भेजा था, वह हिन्दी में था। उन्होंने मुझे 'मेरे प्रिय भाई' कहकर सम्बोधित किया था। इस बात ने मुझे

महात्मा मुंशीराम का प्रेमी बना दिया। इससे पहले हम दोनों कभी मिले नहीं।

एण्ड्रयूज़ हम लोगों के सूत्र थे। उनकी इच्छा थी कि जब कभी मैं देश लौटूं, उनके तीनों मित्र- कवि ठाकुर, आचार्य रुद्र और महात्मा मुंशीराम से परिचय प्राप्त करूँ।

वह पत्र पाने के बाद हम दोनों एक ही सेना के सैनिक बन गये। १९१५ में हम दोनों उनके प्रिय गुरुकुल में मिले और उसके बाद से हर मुलाकात में हम दोनों परस्पर निकट आते गये और एक-दूसरे को ज्यादा अच्छी तरह समझने लगे। प्राचीन भारतीय संस्कृति और हिन्दी के प्रति उनका प्रेम असीम था। बेशक, असहयोग के पैदा होने के बहुत पहले ही असहयोगी थे। स्वराज्य के लिए वे अधीर थे। अस्पृश्यता से वे नफरत करते थे और अस्पृश्यों की स्थिति ऊँची करना चाहते थे। अस्पृश्यों की स्वाधीनता पर कोई बन्धन उन्हें सह्य नहीं था।

जब रौलेट अधिनियम के विरुद्ध आन्दोलन आरम्भ हुआ तो उस आन्दोलन का स्वागत करनेवालों में वे सबसे पहले थे। उन्होंने मुझे बहुत ही प्रेम से भरा एक पत्र भेजा। किन्तु वीरमगाम और अमृतसर-काण्ड के बाद सत्याग्रह का स्थगित किया जाना ये न समझ सके। उस समय से हमारे बीच मतभेद आरम्भ हुये, किन्तु उनसे हमारे भाई-भाई के सम्बन्ध में कभी कोई अन्तर नहीं पड़ा। उस मतभेद से मुझ पर उनका बालसुलभ स्वभाव प्रकट हुआ। परिणाम का विचार किये बिना ही वे जो सत्य समझते थे, वह कह देते थे। ये अति साहसिक थे। समय के साथ-साथ मेरे सामने हम दोनों के स्वभाव का अन्तर स्पष्ट होता गया, किन्तु उससे तो उनकी आत्मा की शुद्धता ही सिद्ध हुई। जैसा सोचना, वैसा ही कहना कोई दोष नहीं है। यह तो एक गुण है। यह तो सत्यप्रियता का सर्वप्रधान लक्षण है। स्वामीजी मन की बात स्पष्ट कहते थे।

बारडौली में किये गये निश्चय से उनका दिल टूट गया। मेरी तरफ से वे निराश हो गये। उनका प्रकट विरोध बहुत जबर्दस्त था। मेरे नाम उनके निजी पत्रों में और भी जोरदार विरोध होता था। किन्तु जितना जोरदार उनका विरोध होता था उतना ही जोरदार उनका प्रेम भी होता था। अपने प्रेम का विश्वास केवल पत्रों में ही दिला देने से वे सन्तुष्ट न थे। मौका मिलने पर उन्होंने मुझे ढूँढ निकाला और मुझे अपनी स्थिति समझाई और मेरी स्थिति समझने की भी कोशिश की। मगर मुझे मालूम होता है कि मुझे ढूँढ निकालने का असली कारण यह था कि वे विश्वास दिला सकें कि एक छोटे भाई के समान मुझपर उनकी प्रीति जैसी की तैसी बनी हुई है-गोया यह विश्वास दिलाने की कोई जरूरत न थी?

आर्यसमाज और उसके संस्थापक के सम्बन्ध मेरे कथनों से और स्वयं उनके बारे में मेरी उक्तियों से उन्हें बहुत गहरी ठेस लगी, परन्तु हमारी मित्रता में इस धक्के को सह लेने की शक्ति थी। वे समझ नहीं पाते थे कि महर्षि के विषय में मेरी सामान्य धारणा और अपने व्यक्तिगत शत्रुओं के प्रति ऋषि की असीम क्षमा का एक साथ मेल कैसे बैठ सकता है? महर्षि में उनकी इतनी अधिक श्रद्धा थी कि उन पर या उनकी शिक्षाओं पर कोई भी टीका वे सहन नहीं कर सकते थे।

एक महान् सुधारक के जीवन के संस्मरणों को मैं सत्याग्रहाश्रम में उनके कुछ ही महीने पहले के आखिरी आगमन की बात की चर्चा किये बिना खत्म नहीं कर सकता। मुसलमान मित्रों को मैं विश्वास दिलाता हूँ कि वे मुसलमानों के दुश्मन नहीं थे। वे बेशक कुछ मुसलमानों का विश्वास नहीं करते थे। किन्तु उन लोगों से उनको द्वेष नहीं था। उनका ख्याल था कि हिन्दू दबा लिये गये हैं और उन्हें बहादुर बनकर अपनी और अपनी इज्जत की रक्षा करने योग्य बनना चाहिये। इस बारे में उन्होंने मुझसे कहा था कि मेरे विषय में बड़ी गलतफहमी फैली हुई है। मेरे विरुद्ध कही जानेवाली कई बातों में मैं बिलकुल निर्दोष हूँ। मेरे पास धमकी के कितने ही पत्र आया करते हैं। मित्रगण उन्हें अकेले चलने से मना करते थे। मगर यह परम आस्तिक पुरुष उनको यह जवाब दिया करता था 'ईश्वर की रक्षा के सिवाय मैं और किसकी रक्षा का भरोसा करूँ? उसकी आज्ञा के बिना एक तिनका भी नहीं हिलता। मैं जानता हूँ कि जब तक इस देह के द्वारा वह मुझसे सेवा लेना चाहता है, मेरा बाल भी बाँका नहीं हो सकता।'

आश्रम में रहते समय उन्होंने आश्रम की पाठशाला के लड़के-लड़कियों से बातें की थीं। उनका कहना था हिन्दू धर्म को सबसे बड़ी रक्षा आत्मशुद्धि से ही, भीतर से ही होगी। चरित्र और शरीर के गठन के लिए वे ब्रह्मचर्य पर बहुत जोर देते थे।

स्वराज्य, स्वधर्म व स्वाभिमान हेतु बलिदानी महात्माः स्वामी श्रद्धानन्द

श्री विनोद बंसल

एडवोकेट मुंशीराम से स्वामी श्रद्धानन्द तक जीवन यात्रा विश्व के प्रत्येक व्यक्ति के लिए बेहद प्रेरणादायी है। स्वामी श्रद्धानन्द उन बिरले महापुरुषों में से एक थे जिनका जन्म ऊँचे कुल में हुआ, किन्तु बुरी लतों के कारण प्रारम्भिक जीवन बहुत ही निकृष्ट किस्म का था। स्वामी दयानन्द सरस्वती से हुई एक भेंट और पत्नी के पतिव्रत धर्म तथा निश्छल निष्कपट प्रेम व सेवा भाव ने उनके जीवन को क्या से क्या बना दिया। काशी विश्वनाथ मन्दिर के कपाट सिर्फ रीवा की रानी के लिए खोलने और साधारण जनता के लिए बन्द किए जाने व एक पादरी के व्यभिचार का दृश्य देख मुंशीराम का धर्म से विश्वास उठ गया और वह बुरी संगत में पड़ गए।

किन्तु स्वामी दयानन्द सरस्वती के साथ बरेली में हुए सत्संग ने ना सिर्फ उन्हें जीवन का अनमोल आनन्द दिया, अपितु उन्होंने उसे सम्पूर्ण संसार को खुले मन से भी वितरित भी किया। समाज सुधारक के रूप में उनके जीवन का अवलोकन करें तो पाते हैं कि प्रबल विरोध के बावजूद, उन्होंने, स्त्री शिक्षा के लिए अग्रणी भूमिका निभाई। ईसाई मिशनरी विद्यालय में पढ़ने वाली स्वयं की बेटी अमृतकला को जब उन्होंने ईसा-ईसा बोल तेरा क्या लगेगा मोल। ईसा मेरा राम रमैया, ईसा मेरा कृष्ण कन्हैया गाते हुए सुना तो वे हतप्रभ रह गए। वैदिक संस्कारों की पुनः स्थापना हेतु उन्होंने घर-घर जाकर चन्दा इकट्ठा कर गुरुकुल काँगडी विश्वविद्यालय की स्थापना हरिद्वार में कर अपने बेटे हरिश्चन्द्र और इन्द्र को सबसे पहले भर्ती करवाया।

स्वामी जी मानते थे कि जिस समाज और देश में शिक्षक स्वयं चरित्रवान् नहीं होते उसकी दशा अच्छी हो ही नहीं सकती। उनका कहना था कि हमारे यहाँ टीचर हैं, प्रोफेसर हैं, प्रिसिंपल हैं, उस्ताद हैं, मौलवी हैं पर आचार्य नहीं है। आचार्य अर्थात् आचारवान् व्यक्ति की महती आवश्यकता है। चरित्रवान् व्यक्तियों के अभाव में महान् से महान् व धनवान से धनवान राष्ट्र भी समाप्त हो जाते हैं।

जात-पात व ऊँच-नीच के भेदभाव को मिटाकर समग्र समाज के कल्याण के लिए उन्होंने अनेक कार्य किए। अंग्रेजी में एक कहावत है कि चैरिटी बीगिन्स एट होम अर्थात शुभकार्य का प्रारंभ स्वयं से करें प्रबल सामाजिक विरोधों के बावजूद अपनी बेटी अमृतकला, बेटे हरिश्चन्द्र व इन्द्र का विवाह जात-पात के समस्त बन्धनों को तोड़कर कराया। उनका विचार था कि छुआछूत ने इस देश में अनेक जटिलताओं को जन्म दिया है तथा वैदिक वर्ण व्यवस्था के द्वारा ही इसका अन्त कर अछूतोद्धार सम्भव है।

वे हिन्दी को राष्ट्रभाषा और देवनागरी को राष्ट्र-लिपि के रूप में अपनाने के पक्षधर थे। सद्धर्म प्रचारक नामक पत्र उन दिनों उर्दू में छपता था। एक दिन अचानक ग्राहकों के पास जब यह पत्र हिंदी में पहुँचा तो सभी दंग रह गए, क्योंकि उन दिनों उर्दू का ही चलन था। त्याग व अटूट संकल्प के धनी स्वामी श्रद्धानन्द ने १८९८ में यह घोषणा की कि जब तक गुरुकुल के लिए ३० हजार रुपए इकट्ठे नहीं हो जाते तब तक वह घर में पैर नहीं रखेंगे। इसके बाद उन्होंने शिक्षा की झोली डालकर न सिर्फ घर-घर घूम ४० हजार रुपये इकट्ठे किए बल्कि वहीं डेरा डालकर अपना पूरा पुस्तकालय, प्रिंटिंग प्रेस और जालन्धर स्थित कोठी भी गुरुकुल पर न्योछावर कर दी।

उनका अटूट प्रेम व सेवा भाव भी अविस्मरणीय है। गुरुकुल में एक ब्रह्मचारी के रुग्ण होने पर जब उसने उल्टी की इच्छा जताई तब स्वामी जी द्वारा स्वयं की हथेली में उल्टियों को लेते देख सभी हत्प्रभ रह गए। ऐसी सेवा और सहानुभूति और कहाँ मिलेगी? स्वामी श्रद्धानन्द का विचार था कि अज्ञान, स्वार्थ व प्रलोभन के कारण धर्मान्तरण कर बिछुड़े स्वजनों की शुद्धि करना देश को मजबूत करने के लिए परम आवश्यक है। इसीलिए, स्वामी जी ने भारतीय हिन्दू शुद्धि सभा की स्थापना कर दो लाख से अधिक मलकानों को शुद्ध किया। परावर्तन के अनेक कीर्तिमान बनाने के बावजूद एक बार शुद्धि सभा के प्रधान को

उन्होंने पत्र लिख कर कहा कि अब तो यही इच्छा है कि दूसरा शरीर धारण कर शुद्धि के अधूरे काम को पूरा करूँ। मुझे लगता है कि उनके शुद्धि आन्दोलन के परिणामस्वरूप ही आज दिल्ली भारत में है। अन्यथा, उस समय दिल्ली के आसपास बढ़ी मुस्लिम जनसंख्या के कारण विभाजन के बाद दिल्ली भी पाकिस्तान के हिस्से में चली जाती।

महर्षि दयानन्द ने राष्ट्र सेवा का मूलमन्त्र लेकर आर्यसमाज की स्थापना की। कहा कि हमें और आपको उचित है कि जिस देश के पदार्थों से अपना शरीर बना, अब भी पालन होता है, आगे होगा, उसकी उन्नति तन-मन-धन से सब जने मिलकर प्रीति से करें स्वामी श्रद्धानन्द ने इसी को अपने जीवन का मूलाधार बनाया।

वे एक निराले वीर थे। इसी कारण लौहपुरुष सरदार वल्लभभाई पटेल ने कहा था स्वामी श्रद्धानन्द की याद आते ही १९१९ का दृश्य आँखों के आगे आ जाता है। सिपाही फायर करने की तैयारी में हैं। स्वामी जी छाती खोलकर आगे आते हैं और कहते हैं- लो, चलाओ गोलियाँ। इस वीरता पर कौन मुग्ध नहीं होगा? महात्मा गाँधी के अनुसार वह वीर सैनिक थे वीर सैनिक रोग शैय्या पर नहीं, परन्तु रणांगण में मरना पसन्द करते हैं। वह वीर के समान जीये तथा वीर के समान मरे।

अफ्रीका में भारतीयों के अधिकारों के लिए रंगभेद के विरुद्ध सत्याग्रह कर रहे गाँधी जी को आर्थिक सहयोग करने की अपनी इच्छा जब स्वामी जी ने अपने गुरुकुल के शिष्यों के समक्ष रखी तो उनमें से कुछ वरिष्ठ शिष्यों ने हरिद्वार के पास ही बन रहे दूधिया बाँध में कुछ दिन मजदूरी कर कमाए लगभग २००० रुपए एकत्र कर गाँधी जी को भेजे। इस सहयोग से अभिभूत गाँधी जी ने भारत लौटने पर गुरुकुल काँगड़ी में स्वामी जी से भेंट की। गुरुकुल की शिक्षा-पद्धति से प्रसन्न गाँधी जी ने अपने बेटों को कुछ दिन गुरुकुल में ही रखा। स्वामी श्रद्धानन्द ने ही एक मान पत्र के माध्यम से गाँधी जी को महात्मा की उपाधि से पहली बार सम्बोधित किया था। वे चाहते थे कि राष्ट्र धर्म को बढ़ाने के लिए प्रत्येक नगर में एक हिन्दू-राष्ट्र मन्दिर होना चाहिए जिसमें २५ हजार व्यक्ति एक साथ बैठ सकें। वहाँ वेद, उपनिषद्, गीता, रामायण, महाभारत आदि का पाठ हुआ करे। मन्दिरों में अखाड़े भी हों जहाँ, व्यायाम के द्वारा शारीरिक शक्ति भी बढ़ाई जाए। प्रत्येक हिन्दू राष्ट्र मन्दिर पर गायत्री मन्त्र भी अंकित हो। देश की अनेक समस्याओं तथा हिन्दोद्धार हेतु उनकी एक पुस्तक हिन्दू सॉलिडेरिंटी-सेवियर ऑफ डाइंग रेस अर्थात् हिन्दू संगठन-मरणोन्मुख जाति का रक्षक तथा उनकी आत्मकथा 'कल्याण मार्ग के पथिक' आज भी हमारा मार्गदर्शन कर रही है। संस्कारी शिक्षा, नारी स्वाभिमान, शुद्धि आन्दोलन, राजनीतिक व समाजिक सुधार, स्वराज्य आन्दोलन, अछूतोद्धार, वेद, उपनिषद् व याज्ञिक कार्यों का विस्तार इत्यादि के क्षेत्र में उनका योगदान सदियों तक विश्व कल्याण का मार्ग प्रशस्त करेगा।

राजनीतिज्ञों के बारे में स्वामी जी का मत था कि भारत को सेवकों की आवश्यकता है लीडरों की नहीं। शुद्धि आन्दोलन से विचलित एक धर्मान्ध अब्दुल रशीद नामक इस्लामिक जिहादी ने २३ दिसम्बर १९२६ को दिल्ली कार्यालय में रुग्ण शैया पर लेटे स्वामी जी को धोखे से गोलियों से लहूलुहान कर चिरनिद्रा में सुला दिया। वे आज सशरीर भले हमारे बीच ना हों किन्तु, उनका व्यक्तित्व, कृतित्व व शिक्षाएँ मानव जाति का सदैव कल्याण करती रहेंगी। भगवान् श्रीराम का कार्य इसीलिए सफल हुआ, क्योंकि उन्हें हनुमान जैसा सेवक मिला। स्वामी श्रद्धानन्द भी सच्चे अर्थों में स्वामी दयानन्द के हनुमान थे जो निस्वार्थ भाव से राष्ट्र धर्म की सेवा के लिए तिल-तिल कर जले।

राष्ट्रीय प्रवक्ता, विश्व हिन्दू परिषद्

धर्म्म- जिसका स्वरूप ईश्वर की आज्ञा का यथावत् पालन और पक्षपात-रहित न्याय, सर्वहित करना है, जो कि प्रत्यक्षादि प्रमाणों से सुपरीक्षित और वेदोक्त होने से सब मनुष्यों के लिये यही एक धर्म्म मानना योग्य है, उसको '**धर्म**' कहते हैं।

- आर्योद्देश्यरत्नमाला - २

स्वामी श्रद्धानन्द

डॉ. दिनेशचन्द्र शास्त्री

भारत की राजधानी दिल्ली के चाँदनी चौक में स्थित, एक विशालकाय भव्य मूर्ति (स्टेच्यू) को देखकर सहसा ही उस लौहपुरुष की याद आ जाती है, जिसने गोरों की संगीनों के आगे अपना वक्षस्थल खोलकर कहा था- ''यदि हिम्मत है तो चला दो गोली, संन्यासी का सीना खुला है।'' कैसा अनोखा व्यक्तित्व था वह न मरने की चिन्ता और न दैन्य से जीने की चाह। आकुलता से निहारती हुई जामा मस्जिद आज कह रही है कि संसार के इतिहास में केवल यह अनोखा व्यक्तित्व ही था जिसने किसी मस्जिद में जाकर पवित्र वेदमन्त्रों का उच्चारण किया। राजनीतिक क्षेत्र में ही नहीं, अपितु सामाजिक क्षेत्र में भी स्वामी श्रद्धानन्द ने वह अनोखा कार्य किया, जिसके आगे आज सारा विश्व नतमस्तक है। प्राचीन आर्ष शिक्षा पद्धति के उद्धारक आचार्य दयानन्द के बताये मार्ग पर चलनेवाले श्रद्धानन्द ही पहले व्यक्ति थे जिन्होंने गुरुकुल पद्धति के शिक्षणालय की **''उपह्वरे गिरीणां संगमे च नदीनाम्। धिया विप्रो अजायत''** - के निर्देशानुसार, हिमालय की कन्दराओं में स्थापना की। यही नहीं, इस शिक्षणालय में सबसे पहले अपने ही बच्चों को प्रविष्ट किया।

स्वामी श्रद्धानन्द इस बात को मानते थे कि संस्कृत का अध्ययनाध्यापन देशभक्ति का कार्य है। उनकी मान्यता थी कि भारत की शिक्षा पद्धति सच्चे अर्थों में तभी राष्ट्रीय हो सकती है जब यहाँ के विद्यालयों में संस्कृत का अध्ययन हो। अंग्रेजी सरकार ने भारत में जिस शिक्षा प्रणाली को प्रचलित किया है वह देशभक्ति का विनाश कर रही है और उन्हें ''मानसिक दास'' बना रही है। आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षा की एक ऐसी योजना तैयार की जाये, जो सच्चे अर्थों में ''राष्ट्रीय'' हो। स्वामी जी मानते थे कि विशाल संस्कृत साहित्य का आरम्भ बिन्दु वेद ही है अतएव गुरुकुल के विद्यार्थियों को वेदज्ञ बनाने के लिए वे पौराणिक विद्वानों को भी गुरुकुल में अध्यापनादि के लिए बुलाते थे।

यह स्वामी श्रद्धानन्द का ही असाधारण व्यक्तित्व था जो कि गुरुकुल जैसी अतुलनीय संस्था के निर्माणानन्तर भी, उन्हें न केवल विद्यार्थियों से ही, अपितु अपने आर्यसमाजी भाइयों से भी इस शिक्षण संस्था के लिए विरोध का सामना करना पड़ा। ८ श्रावण, संवत् १९६५ (सन् १९०८) के ''सद्धर्म प्रचारक'' के अंक में वे स्वयं लिखते हैं- ''ब्रह्मचर्याश्रम के उद्धार के लिए जिस दिन गुरुकुल की पाठविधि तथा उसके प्रबन्ध-सम्बन्धी नियम हाथ में लेकर सेवकों ने काम करना प्रारम्भ किया था, उसी दिन गुरुकुल पर वज्र प्रहार प्रारम्भ हो गये थे। अपनों और बेगानों, आर्यों और अनार्यों सभी प्रकार के पुरुषों ने उसको जड़ से उखाड़ फेंकने के लिए नाना प्रकार के प्रयत्न किये। किन्तु जब गंगा तट पर पहुँचकर ब्रह्मचारियों के समूह ने इस जंगल को वेद मन्त्रों की ध्वनि से गुंजाना शुरु किया तब से तो आक्रमणों की कुछ गिनती ही नहीं रही।''

महात्मा मुंशीराम के अथक परिश्रम से जिस गुरुकुल ने थोड़े ही दिनों में दिन-दूनी और रात चौगुनी उन्नति और ख्याति प्राप्त की, उस गुरुकुल को विदेशी भी देखने के लिए आने लगे। गुरुकुल के इन पाश्चात्य दर्शकों में श्री सी.एफ. एण्ड्रूज सबसे प्रमुख थे। सन् १९१३ ई. में गुरुकुल को देखने पर मॉर्डन रिव्यू (कलकत्ता) में उन्होंने एक लेख में लिखा था- ''जिस भारत को मैं जानता था जिस भारत से मैं प्रेम करता था जो भारत मेरे स्वप्नों में था वह मुझे यहाँ देखने को मिला। मैंने अपने सम्मुख उस मातृभूमि को देखा जो न शोकातुर थी और न श्रान्त न क्लान्त, जिसमें अनन्त अनश्वर यौवन था जो बसन्त के समान ताजा व नवयौवना थी। यहाँ गुरुकुल में यह नवभारत विद्यमान था।''

स्वयं महात्मा गाँधी ने एक बार बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के उत्सव से लौटने पर, मदनमोहन मालवीय को पत्र में लिखा था- ''अगर स्वामी श्रद्धानन्द हरिद्वार में गंगा के पावन तट पर बैठकर छात्रों को भारतीय सभ्यता का पानी पिला सकते हैं तो, आप वाराणसी के अन्दर उसी

गंगा के किनारे बैठकर व्यर्थ में ही टेम्स नदी का जल क्यों पिला रहे हो?''

स्वामी श्रद्धानन्द ने हिन्दी-साहित्य क्षेत्र में भी महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। आत्मकथा-लेखकों में स्वामी जी का ही नाम सबसे प्रथम लिया जाता है।''कल्याण मार्ग का पथिक'' स्वामी जी की वह आत्मकथा है जिसमें उन्होंने नि:संकोच अपना वृतान्त लिखा है- चाहे वह उनका उज्ज्वल पक्ष हो या अनुज्ज्वल। यह महापुरुषों की पहचान है।

महात्मा मुंशीराम देश के लिए ही जिये और उसके खातिर ही मरे। उनका बलिदान आज हमको प्रेरणा दे रहा है कि- हे भारत के कर्णधारो! इस चमन को तुम बर्बाद न होने देना यह पौधा मुरझाये नहीं यह फल और फूलों से सदा आबाद रहे। यदि इसके ऊपर कभी विपत्ति के बादल मँडराये तो उसको सहर्ष, चाहे प्राणों की आहुति ही क्यों न देनी पड़े, हटा देना। उस महान् मनीषी, भारत के नवनिर्माता को डॉ. सत्यव्रत 'अजेय' के निम्न शब्दों में श्रद्धाञ्जलि देता हूँ-

''इस मुल्क के चमन को, है चश्मेतर से सींचा।
इल्मोहुनर से सींचा, कभी मालोजर से सींचा।।
'श्रद्धा' बयाँ करें क्या, कुर्बानियाँ तुम्हारी।
जब वक्त आ पड़ा तो, खूनेजिगर से सींचा।।''

वेद विभाग,
गुरुकुल कांगडी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
चलभाष - ९४१०१९२५४१

स्वामी का स्वामी से मिलाप

-श्री पं. नारासयण प्रसाद 'बेताब'

मरते मरते भी हमें मरना सिखाकर चल दिये।
यह अमर जीवन का नुसखा था बताकर चल दिये॥१॥

आपकी हस्ती थी या तस्वीरे इस्तकलाल थी।
गोलियाँ पिस्तोल की सीने पै खाकर चल दिये।।२।।

कब तमंचे से कलेजे में हुए सुराख चार
चार आश्रम को निभा और दिखाकर चल दिये।।३।।

लग गई अब खून की धारों से पक्की दाग़बेल।
वीर पुत्रों के लिए रास्ता बनाकर चल दिये॥४।।

केस शुद्धि का न अब तनसीख के काबिल रहा।
फैसिले पर खून की मुहरें लगाकर चल दिये॥५॥

अब चलीं शुद्धि के पौदे की जड़ें पाताल को।
खूने दिल से बाग़वाँ पानी लगाकर चल दिये॥६॥

हासिदों को था शराकत और असालत पर गरूर।
आजमाना था उन्हें बस आजमा कर चल दिये॥७॥

देखकर कातिल को अपने महज़ बुजदिल, जन खिलास।
हथकड़ी की चूड़ियाँ कर में पिन्हा कर चल दिये॥८॥

मुद्दआ यह था न औरों पर पड़े गर्दो गुबार।
धर्म के पथ में लहू अपना बहाकर चल दिये॥९॥

कोई माँ का लाल हो अब आये सज्जादा नशीं।
आप तो मठ में पवित्रासन बिछाकर चल दिये॥१०।।

देख लो आशा का लाशा और मनोरथ का विमान।
चार दिन जो मोहिनी मूरत दिखाकर चल दिये ॥११॥

आ गया था वन के अग्नी-बाण अग्नी का पयाम।
यूँ शरण में अग्नि की आनन्द पाकर चल दिये॥१२॥

हो गये 'बेताब' श्रद्धानन्द स्वामी जब शहीद।
धैर्य और सन्तोष सब दामन छुड़ा कर चल दिये॥१३॥

राष्ट्रीय एकता के प्रबल पोषक स्वामी श्रद्धानन्द

श्री रामनिवास 'गुणग्राहक'

गुरुकुल विश्वविद्यालय काँगड़ी के यशस्वी संस्थापक स्वामी श्रद्धानन्द एक कुशल शिक्षा शास्त्री ही नहीं थे, बल्कि एक उच्चस्तर के राष्ट्रनायक भी थे। महर्षि दयानन्द सरस्वती के योग्यतम शिष्य स्वामी श्रद्धानन्द जी ने संन्यास लेने के बाद गुरुकुल से छुट्टी पाकर अपना सारा जीवन राष्ट्र सेवा में समर्पित कर दिया था। राष्ट्रीय कांग्रेस में उनकी गिनती महात्मा गाँधी, मोतीलाल नेहरू के साथ होती थी। सन् १९१९ में रोलेट एक्ट का विरोध करते हुए जब गांधी जी को गिरफ्तार कर लिया तो दिल्ली की आक्रोशित जनता ने स्वामी जी के नेतृत्व में विरोध मार्च निकाला था। ३० मार्च १९१९ का दिन स्वाधीनता आन्दोलन का गौरवपूर्ण दिन था, जब एक वैदिक संन्यासी ने अंग्रेजी सरकार के गोरखे सिपाहियों की संगीनों की नोंक से अपनी छाती खोलकर अड़ा दी थी। घण्टाघर के निकट विरोध मार्च जब पहुँचा तो सिपाहियों ने अचानक गोली चला दी। स्वामी जी भीड़ को चीरकर सिपाहियों के पास जाकर बोले- गोली क्यों चलाई? उत्तर मिला- हट जाओ सामने से, नहीं तो छेद देंगे। बस फिर क्या था, साधु की शूरता जाग उठी। गेरुए वस्त्रों से शेरों जैसा सीना निकालकर स्वामी जी गरज उठे- चलाओ गोली, मार दो मुझे। इतिहास साक्षी है कि साधु का साहस देखकर सिपाही सहम गए। लगभग तीन मिनट तक श्रद्धानन्द जी सीना ताने खड़े रहे, अंग्रेज अधिकारी मि. औड़ ने आकर स्वामी जी से क्षमा याचना की, तब जाकर स्वामी जी जन सैलाब को लेकर आगे बढ़े। लोगों का उत्साह बोल रहा था-

''भगवान् हमें ऐसा वर दो तूफानों से टकराने का।
सागर की प्रबल तरंगों से स्वर मिला-मिलाकर गाने का।''

स्वामी जी की इस बहादुरी पर टिप्पणी करते हुए प्रसिद्ध वैज्ञानिक प्रफुल्लचन्द्र राय ने कहा था- यदि सन् १९१९ में दिल्ली में स्वामी श्रद्धानन्द जी सरीखा दूरदर्शी, नीतिमान व साहसी नेता न होता तो हमें वहाँ दूसरा जलियाँवाला बाग देखना पड़ता।''

स्वामी श्रद्धानन्द जी जहाँ शेर से मुठभेड़ करने और अंग्रेजी सरकार से टकराने का साहस रखते थे, वहीं उनका हृदय इतना विशाल और उदार था कि हिन्दू, मुसलमान, सिख व ईसाई आदि सभी को वे अपनेपन की दृष्टि से देखते थे। वे साम्प्रदायिक सद्भाव के सच्चे और सबल पोषक थे। उनके गुरुकुल में सबको अपने-अपने ढंग से उपासना करने की पूरी सुविधा प्राप्त थी। मुसलमान बन्धु वहाँ पाँच वक्त की नमाज़ प्रेम से अदा करते थे। उनका साम्प्रदायिक सद्भाव देखकर सभी लोग बिना किसी साम्प्रदायिक संकीर्णता के स्वामी जी का भरपूर सम्मान करते थे। ३० मार्च को घण्टाघर वाली घटना के चार दिन बाद मुसलमान बन्धु उन्हें घर से तांगे पर बिठाकर ले गए और दिल्ली की जामा मस्जिद से तकरीर करने की प्रार्थना की। इस्लाम के इतिहास में **४ अप्रैल १९१९ का यह दिन भी स्वर्ण अक्षरों में अंकित रहेगा, जब एक गैर इस्लाम के धर्माचार्य ने वेद मन्त्र- त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ...।** बोलकर परस्पर भाईचारे को बनाए रखने और बढ़ाने का सन्देश दिया। इतना ही नहीं **६ अप्रैल को फतेहपुरी मस्जिद से मुस्लिम बन्धुओं को सम्बोधित करने का अवसर स्वामी जी को पुनः दिया गया।** माण्डले की दरगाह से लगभग २५००० लोगों को देशभक्ति का पाठ पढ़ानेवाले श्रद्धानन्द जी मुस्लिम जगत् के सर्वमान्य नेता बन चुके थे।

सिख बन्धुओं की बात करें तो स्वामी जी की गिनती उनके बलिदानी वीरों में की जाती है। सिख इतिहास में गुरु के बाग आन्दोलन का बड़ा महत्त्व है। स्वामी श्रद्धानन्द जी को सौभाग्य प्राप्त है कि ये गुरु के बाग के मोर्चे के जत्थेदार बनकर सिख साहिबानों के साथ लगभग एक वर्ष तक मियांवाली जेल में बन्द रहे। ५ अक्टूबर १९२२ को धारा १७७ में एक वर्ष और धारा-१४३ में चार माह का कारावास उन्हें ६६ वर्ष की वृद्धावस्था भोगना पड़ा। स्वामी जी 'बन्दीघर के विचित्र अनुभव' नामक पुस्तक में अपने कारावास की स्मृतियों को याद करते हुए बड़ा मार्मिक चित्रण करते हैं। जेल में सिखों के शिरोमणि नेताओं व

प्रमुख ग्रन्थियों का दीवान सजता था। सब भाषण कर चुके होते तो स्वामी जी से प्रार्थना की जाती कि अपना आशीर्वाद दें। स्वामी जी ने सिख सरदारों की सहृदयता व धर्मनिष्ठा की खुले हृदय से प्रशंसा की है। जेल से छूटकर जब स्वामी जी अमृतसर आए तो श्रद्धालु सिख बन्धु उन्हें बड़े सम्मान के साथ दरबार साहिब ले गए और वहाँ अकाल तख्त से स्वामी जी के प्रवचन हुए। अकाल तख्त पर भाषण करने के कारण प्राप्त कारावास की समाप्ति भी उन्होंने एक वीर पुरुष की तरह अकाल तख्त से भाषण देकर ही की।

वृहद हिन्दू वर्ग के लिए स्वामी जी ने क्या कुछ किया इसकी तो गणना करना भी सम्भव नहीं। सनातन धर्म के सर्वमान्य नेता पं. मदनमोहन मालवीय जी स्वामी जी के सम्बन्ध में लिखते हैं- ''स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज हिन्दू धर्म के गौरव गगन के चमकते हुए नक्षत्र थे। आपका जीवन देशभक्ति और समाज सेवा का लम्बा इतिहास है।'' यद्यपि वे कांग्रेस के शीर्ष नेताओं में गिने जाते थे, लेकिन दलित वर्ग के साथ हो रहे भेदभाव को दूर करके उन्हें सामाजिक अधिकार दिलाने के उनके प्रस्ताव पर कांग्रेस आगे न बढ़ सकी, तो स्वामी जी ने कांग्रेस से त्यागपत्र दे दिया। उन्होंने अपने बल पर अछूतोद्धार सभा बनाकर जो काम किया वह इतिहास में अद्वितीय है। दलितों के प्रति उनके कार्यों को स्मरण करते हुए डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने कहा था- ''स्वामी श्रद्धानन्द दलितों के सबसे बड़े हितैषी थे। दलितों के प्रति उनकी सेवा का मूल्यांकन कौन कर सकता है?'' १९२४ में ६८ वर्ष की वृद्धावस्था और रोगी शरीर को लेकर वे दलितोद्धार के लिए कर्नाटक, आन्ध्रप्रदेश, मद्रास प्रान्त (तत्कालीन) तक घूमे और दलितों के सामाजिक अधिकारों व मानवीय सम्मान के लिए वातावरण तैयार किया। पंजाब सनातन धर्म सभा के प्रधान रायबहादुर रामशरण दास जी ने कहा था- मैं स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज का बड़प्पन मानता हूँ कि उन्होंने सनातन धर्मियों के साथ मिलकर संगठन का कार्य किया। हिन्दुओं की सामाजिक बुराइयों के विरुद्ध निरन्तर संघर्ष करनेवाले इस साहस के धनी साधु के वीर-भाव को गाँधी जी ने निकट से देखा था। गाँधी जी ने एक बार कहा था- स्वामी जी वीरों के वीर और शूर शिरोमणि थे। स्वामी जी ने अपनी वीरता के निरन्तर रिकॉर्ड से देश को दंग कर दिया था। उन्होंने स्वयं को मातृभूमि पर आहूत करने की प्रतिज्ञा की थी, मैं इसका प्रत्यक्ष साक्षी हूँ।

ब्रिटिश शासन स्वामी जी के गुरुकुल की प्रवृत्तियों के कारण प्रारम्भ से ही भयभीत था। शासन के कई गुप्तचर वेष बदलकर समय-समय पर गुरुकुल जाते रहते थे। यहाँ तक कि वायसराय-चेम्सफोर्ड भी गुरुकुल में जा चुके थे। ब्रिटिश संसद की लेबर पार्टी के तत्कालीन नेता रेम्जे मैकडानल्ड जो आगे चलकर इंग्लैण्ड के प्रधानमन्त्री बने, गुरुकुल काँगड़ी घूमने गए। स्वामी श्रद्धानन्द की शारीरिक भव्यता को देखकर मैकडानल्ड इतने प्रभावित हुए कि वे लौटकर जब ब्रिटेन गए तो वहाँ के प्रसिद्ध दैनिक 'डेली क्रानिकल' में लिखते हैं- ''एक उन्नत काय दर्शनीय मूर्ति हमसे भेंट करने आती है। आधुनिक कलाकार ईसा की प्रतिकृति गढ़ने के लिए आदर्श के रूप में इसका स्वागत करता है तो मध्यकालीन रुचि का चित्रकार इसमें सन्त पीटर का रूप देखता है। सी. एफ. एण्ड्रयूज की भावना तो अत्यन्त उच्चस्तर की है, वे रविन्द्रनाथ टैगोर को लिखे पत्र में लिखते हैं- महात्मा मुंशीराम (स्वामी जी का संन्यास पूर्व का नाम) अब तक मेरे सम्पर्क में आए, भारतीयों में सर्वोत्कृष्ट (सबसे उत्तम) है।'' इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रद्धानन्द जी इतिहास के ऐसे विलक्षण महामानव है, जिन्होंने अपनी विशाल हृदयता और सबके प्रति प्रेम लुटाकर साम्प्रदायिक सद्भाव का अनूठा अध्याय अपने नाम कर लिया। मानव मात्र के लिए अपना स्नेह उँडेलने वाले इस वीर साधु की हत्या अब्दुल रशीद नामक एक धर्मान्ध व्यक्ति की पिस्तौल की तीन गोलियों से हुई। २३ दिसम्बर १९२६ को सायंकाल तीन गोलियों से छलनी हुए सीने में से वह अमर जीवात्मा निकल ही गई। डॉ. अन्सारी जैसे योग्य चिकित्सक भी उन्हें बचा न सके।

-ग्रा. सूरौता, पो. अवार, जि. भरतपुर, राजस्थान

चलभाष- ९०७९०३९०८८

संस्था की ओर से....

क्या आप प्रतिदिन अतिथि यज्ञ नहीं कर पाते?
तो आइये, अतिथि यज्ञ के होता बनिये

वैदिक नित्यकर्मों में पञ्चमहायज्ञ अवश्य करणीय कर्म हैं। इन्हीं में से एक है- अतिथि यज्ञ। प्रत्येक गृहस्थ के लिए अतिथि यज्ञ प्रतिदिन करना अनिवार्य है, किन्तु आपको प्रतिदिन अतिथि मिलना संभव नहीं, फिर अतिथि यज्ञ कैसे किया जाय? इसका उपाय है, कुछ राशि प्रतिदिन अतिथि यज्ञ के नाम से निकाल ली जाये और वह राशि एकत्र कर अतिथि सत्कार में गुरुकुल/आश्रम में भोजन आदि के सहयोग में दे दी जाय।

यह अल्प राशि आप दैनिक संचय घट में भी जमा कर वर्षान्त अथवा यथासमय सभा को प्रदान कर सभा के माध्यम से अतिथि यज्ञ सम्पन्न कर सकते हैं। वर्ष में लोग अरबों रुपए आग में पटाखे जलाकर व्यय करते हैं, असावधानी से बिजली जलती छोड़ इसे गंवा देते हैं आदि ऐसी छोटी-छोटी असावधानियों को रोक कर हम उसकी बचत राशि इस पावन कृत्य हेतु सभा को वर्ष में आसानी से दे सकते हैं।

सभा के धार्मिक क्रियाकलापों एवं आवासीय स्थल ऋषि उद्यान में उपर्युक्त पावन क्रियाकलाप लम्बे समय तक अबाध चलते रहें, इसके लिए सभा की योजना के अनुसार प्रतिवर्ष ५ हजार एक सौ रु. की राशि प्रदान करने वाले उदार यशस्वी दानदाताओं का नाम अतिथि यज्ञ के स्थायी होता सदस्यों में अंकित किया जाता है, ऐसे सज्जनों के नाम परोपकारी में प्रकाशित भी किये जाते हैं।

यदि अपने सामर्थ्य के अनुसार राशि को न्यूनाधिक करना चाहें तो आपकी स्वतन्त्रता है। अधिक से अधिक लोग परोपकारिणी सभा से जुड़ सकें, आप ऐसा करके ऋषि दयानन्द के कार्यों को आगे बढ़ाने में सहायक होंगे, इसलिए ऐसी राशि निश्चित की है। आप से प्रार्थना है अपना नाम पता और संकल्प लिखकर अवगत करायें और अतिथि यज्ञ के होता बनें। अपनी राशि प्रतिमाह अथवा सुविधानुसार मनीआर्डर/डीडी/चैक/सभा के खाते में ऑनलाइन द्वारा अथवा स्वयं उपस्थित होकर कार्यालय में जमा करा सकते हैं। **आपका दान ८०जी (आयकर की धारा) के अंतर्गत कर मुक्त होगा।**

अनेक 'अतिथि यज्ञ के होता' सदस्यों का आग्रह है, निश्चित तिथि, जन्मदिन, विवाह वर्षगांठ या विशेष अवसर पर वे अपनी ओर से संस्था में भोजन कराना चाहते हैं। ऐसे महानुभावों से निवेदन है कि वे अतिथि यज्ञ के होता के रूप में एक दिन के भोजन व्यय की राशि लगभग पाँच हजार एक सौ रुपये भेजते हुए इच्छित दिन का विवरण सूचित करेंगे, तो उन्हें उनके जन्मदिवस आदि पर परोपकारिणी सभा की ओर से दूरभाष द्वारा आशीर्वाद प्रदान किया जायेगा। यदि उस शुभ अवसर पर वे स्वयं उपस्थित होकर यजमान बनें तो यह सर्वोत्तम होगा।

अतिथि-यज्ञ के होताओं से अनुरोध

जो महानुभाव संकल्प के साथ इस पुनीत कार्य से जुड़े हुए हैं, उनसे हमारा अनुरोध है कि वे अपनी राशि भेजते समय **जन्मतिथि/वैवाहिक वर्षगाँठ आदि व दूरभाष संख्या** सूचित करना न भूलें। साथ ही यह भी अवश्य सूचित करा देवें कि पहले से भिजवा रहे हैं अथवा नया शुरू किया है। राशि जमा करने के पश्चात् दूरभाष द्वारा कार्यालय को अवश्य सूचित करें।

दूरभाष - 8890316961

परोपकारिणी सभा की गतिविधियाँ

परोपकारिणी सभा महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित उनकी उत्तराधिकारिणी सभा है और केवल नाम से ही नहीं, बल्कि अपने कार्यों से भी वह ऋषि प्रदत्त उत्तराधिकार के दायित्व को पूर्णतया निभा रही है। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने इस सभा की स्थापना के समय तीन उद्देश्य रखे थे।

१. वेदादि सत्यशास्त्रों का प्रकाशन २. विद्वान् उपदेशक तैयार करके देश-विदेश में वैदिक धर्म का प्रचार एवं ३. आर्यावर्त्तीय दीन-दरिद्रों की सेवा।

इन सभी कार्यों को सभा अपने विभिन्न प्रकल्पों के माध्यम से पूरा करने में सर्वसामर्थ्य से लगी हुई है। यद्यपि सभा के पास आर्थिक आय का कोई स्थाई माध्यम नहीं है, पुनरपि ऋषिभक्तों एवं आर्यजनों के सहयोग और विश्वास पर ही सभा ने बड़े-बड़े कार्यों को प्रारम्भ किया और निरन्तर कर भी रही है

परोपकारिणी सभा आज अनेक कार्यों, माध्यमों से इस वेद प्रचार यज्ञ में लगी है, जिनमें महत्त्वपूर्ण हैं-

भव्य ऋषि उद्यान आश्रम, अतिथि यज्ञ, भोजनशाला, गौशाला, वानप्रस्थ एवं संन्यासाश्रम, गुरुकुल, परोपकारी पत्रिका, प्रकाशन, योग साधना एवं चरित्र निर्माण शिविर, सत्यार्थ प्रकाश व ऋषि जीवन चरित्र का निःशुल्क वितरण, पाण्डुलिपियों का डिजिटलाइजेशन, पुस्तकालय, औषधालय, देश-देशान्तरों में वेद-प्रचार, आयुर्वेदिक औषधालय।

परोपकारिणी सभा के प्रकल्पों में सहयोग करने हेतु

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक का नाम-**भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी चौक, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**10158172715**

IFSC-SBIN0031588

२. बैंक का नाम-**आई.डी.बी.आई**, पावर हाउस के सामने, जयपुर रोड, अजमेर।

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**091104000057530**

IFSC-IBKL0000091 email : psabhaa@gmail.com

सूचना देने हेतु चलभाष - 8890316961

अन्य प्रकल्पों हेतु सहयोग राशि

पृष्ठ संख्या ३४ का शेष भाग...

१. श्री ऋषभ गुप्ता, अम्बाला केन्ट २. श्रीमती रजनी ठाकुर, दिल्ली ३. श्री देवपालसिंह, मुजफ्फरनगर ४. कु. अन्शी पटेल, प. मुंबई ५. श्री अरुण पंचोली, अजमेर ६. डॉ. सुशील रतन मिगलानी, चण्डीगढ़ ७. डॉ. पंकज रतन, मिगलानी, चण्डीगढ़ ८. डॉ. सतोज मिगलानी, चण्डीगढ़ ९. श्री दीपक नागपाल, चण्डीगढ़ १०. एडवोकेट आरुष मुंजाल, चण्डीगढ़ ११. डॉ. भार्गव मुंजाल, चण्डीगढ़ १२. श्री वेदान्त नागपाल, चण्डीगढ़ १३. श्री यशवीर नागपाल, चण्डीगढ़ १४. सुश्री ओमकुमारी शर्मा, अजमेर १५. आर्यसमाज, रोहतक १६. डॉ. जगदेव विद्यालंकार, रोहतक १७. श्री खजानसिंह गुलिया, रोहतक १८. श्री कंवरसिंह गुलिया, रोहतक १९. श्री सुखवीर सिंह दहिया, रोहतक २०. श्री करतारसिंह आर्य, रोहतक

दानदाताओं की सूची

अतिथि यज्ञ के होता

(०१ से १५ नवम्बर २०२१ तक)

१. श्री हरिश्चन्द्र तनेजा, दिल्ली २. श्री श्रवण मालेवर, अजमेर ३. श्री दीपक शर्मा व श्रीमती कुसुम शर्मा ४. श्री ओमप्रकाश शर्मा, मथुरा ५. सुश्री ओमकुमारी शर्मा, अजमेर ६. सुश्री उन्नति, पाली ७. श्री कपिल सोनी, पाली।

गोभक्तों से निवेदन

ऋषि-उद्यान में परमार्थ हेतु गोशाला संचालित है। गोशाला की गौवों के दूध का वितरण सभी गुरुकुलवासियों, संन्यासियों एवं आगन्तुक अतिथियों में नि:शुल्क किया जाता है। आप सभी गो-भक्तों एवं उदारमना दानदाताओं से सभा का निवेदन है कि गौवों को उत्तम चारा मिले, इसके लिए जो भी सज्जन चारा दान देना चाहें उनका स्वागत है। यदि आप दूरस्थ प्रदेश के हैं तो कृपया चारे हेतु अनुमानित राशि सभा को ड्राफ्ट/चैक/नगद भेज सकते हैं। यशस्वी दानदाताओं के नाम परोपकारी पत्रिका में प्रकाशित किए जाएँगे। आपका दान गौवों के संवर्धन में सहायक होगा।

ऋषि-उद्यान में संचालित गोशाला के दानदाता

(०१ से १५ नवम्बर २०२१ तक)

१. श्री ऋषभ गुप्ता, अम्बाला केन्ट २. श्री राधेश्याम शर्मा, अजमेर ३. श्री हरिप्रसाद शर्मा, अजमेर ४. सुश्री वेदेही कालड़ा, गुरुग्राम ५. श्री राज नागपाल, गुरुग्राम ६. श्रीमती उर्मिला अरोड़ा, गुरुग्राम ७. श्री स्नेह अग्रवाल, गुरुग्राम ८. श्रीमती कृष्ण सुखीजा, गुरुग्राम ९. श्रीमती माधुरी मुंजाल, चण्डीगढ़ १०. डॉ. गौतम, चण्डीगढ़ ११. डॉ. शालिनी नागपाल, चण्डीगढ़ १२. सुश्री ओमकुमारी शर्मा, अजमेर १३. श्री बंशीलाल गुरु, अजमेर १४. श्री गणपत देव सोमानी, अजमेर १५. श्री शान्तिस्वरूप गोयल, लुधियाना १६. श्रीमती सुमित्रा देवी मालू, ब्यावर १७. श्री सुशील शर्मा, अजमेर १८. श्री राजपाल सिंह, हरियाणा १९. श्रीमती शकुन्तला रामानन्द छापरवाल, इचकरणजी। **शेष भाग पृष्ठ संख्या ३३ पर...**

आवश्यक सूचना

आपको जानकर प्रसन्नता होगी कि परोपकारिणी सभा के सहयोगी दानदाताओं की सुविधा के लिए **यू.पी.आई. आई.डी. व क्यू. आर. कोड** की व्यवस्था की गई है।

आप सभी से निवेदन है कि इस माध्यम से एस.बी.आई. पे/गूगल पे/फोन पे/भीम आदि द्वारा सहयोग राशि भेजने के बाद निम्नलिखित दूरभाष संख्या पर सन्देश अवश्य भेज देवें, जिसमें आपके द्वारा भेजी गई राशि, दिनांक के साथ आपका पूरा नाम, पता हो जो कि रसीद पर लिखा जाना है।

कार्यालय दूरभाष - 8890316961

व

(व्हाटसअप)

सम्मान समारोह की झलकियाँ

श्री अमित शास्त्री को
''विश्वकीर्ति आर्य युवा कार्यकर्ता'' पुरस्कार

आचार्य ब्रह्मदत्त आर्य को
''स्वामी आशुतोष आर्ष अध्यापक'' पुरस्कार

ब्र. मोहित आर्य को ''श्री ब्रह्मदत्त शर्मा एवं
श्रीमती शकुन्तला देवी '' छात्रवृत्ति पुरस्कार

वेदकण्ठस्थीकरण प्रतियोगिता के विजेता का सम्मान

ब्र. अखिलेश आर्य को
''श्री वृद्धिचन्द ईनाणी आर्ष छात्रवृत्ति'' पुरस्कार

श्रीमती ज्योत्स्ना ब्र. प्रताप को पुस्तक
प्रदान करते हुए

ब्र. विद्यासागर आर्य को
''श्रीमती सुगनीदेवी ईनाणी आर्ष छात्रवृत्ति'' पुरस्कार

श्री मनमोहन कुमार आर्य को ''श्रीमती सुमनलता पत्नी
श्री इन्द्रजित् देव आर्य'' कार्यकर्त्ता पुरस्कार

आर जे/ए जे/80/2021-2023 तक प्रेषण : १५-१६ दिसम्बर २०२१ आर.एन.आई. ३९५९/५९

सम्मान समारोह की झलकियाँ

श्री विरजानन्द दैवकरणि को
''डॉ. प्रियव्रतदास वेद-वेदाङ्ग'' पुरस्कार

प्रो. श्यामलाल आचार्य को
''डॉ. मुमुक्षु आर्य आर्ष पाठविधि'' पुरस्कार

आचार्या नीरजा आर्या को
''श्रीमती कमलादेवी नवाल विदुषी''
पुरस्कार

आचार्य भवभूति- अलियाबाद
को मरणोपरान्त ''श्री दीपचन्द
आर्य वेद-वेदांग'' पुरस्कार

पं. रामवीर शास्त्री को
''विशिष्ट योगाचार्य'' पुरस्कार

परोपकारिणी सभा के सहयोगी
स्वामी विद्यानन्द का सम्मान

आचार्य रविशंकर आर्य को
''स्व. सेठ मथुराप्रसाद नवाल स्मृति विद्वत्'' पुरस्कार

प्रेषक:

परोपकारिणी सभा
दयानन्द आश्रम, केसरगंज,
अजमेर (राजस्थान) ३०५००१

सेवा में,

डाक टिकिट

This document was created with the Win2PDF “print to PDF” printer available at
http://www.win2pdf.com

This version of Win2PDF 10 is for evaluation and non-commercial use only.

This page will not be added after purchasing Win2PDF.

http://www.win2pdf.com/purchase/